बाल निर्माण की कहानियाँ

२



बाल निर्माण की कहानियाँ

(भाग-२)



लेखिका

डॉ० आशा 'सरसिज'



प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००



पुनरावृत्ति सन् २०१४ मूल्य : ११.०० रुपये

विषय-सूची

सुखी शासन

जुहीरी रावल नदी के पार के जंगल में रहता था । जब वह अपने कबीले का राजा बना तो प्रजा के पास पेट भर खाने को भी नहीं था । अधिकतर स्त्री और पुरुष प्रायः इधर–उधर भूखे ही घूमते रहते थे । उस जंगल के खेतों में न तो पूरी मात्रा में अन्न ही उगता था और न कहीं फल–मूल ही थे ।

राजा बनते ही जुहीरी ने सोचा–'किसी के पास और कुछ चाहे हो न हो, पर पेट भर भोजन तो सबको मिलना ही चाहिये । प्रजा का भरण–पोषण करना राजा का काम है । जो राजा ऐसा नहीं करता, उसके राज्य में लूट–मार और दंगे–फसाद होते रहते हैं ।

जुहीरी रावल ने अपने राज्य के परिश्रमी लोगों को इकट्ठा किया । सभी ने मिल–जुलकर कई दिनों तक कठोर परिश्रम करके जंगल की बंजर जमीन साफ की । उसकी खूब खुदाई की और खाद–पानी डालकर उसे उपजाऊ बनाया । इसके बाद मोंठ, बाजरा, मकई आदि की फसल बो दी ।

जुहीरी ने खेती का काम केवल अपने साथी कर्मचारियों पर न छोड़ा । वह जानता था कि सभी अपने ढंग से, अपनी इच्छा से काम करते हैं, पर हम यह चाहते हैं कि कोई काम वैसा ही हो जैसा कि हम चाहते हैं, तो उसमें जुटना होगा । खेती की देखभाल, गुड़ाई और सिंचाई में औरों के साथ–साथ जुहीरी खुद भी रात–दिन लगा रहता था । जुहीरी को इस प्रकार जुटे रहते देखकर उसके सेवकों को भी प्रेरणा मिलती थी, वे तन–मन से लगे रहते थे ।

परिश्रम का फल सदैव मीठा होता है । जो जितनी अच्छी प्रकार श्रम करता है उसकी इच्छायें भी उतनी ही अच्छी तरह से पूरी हुआ करती हैं । परिश्रम करने वाले की

देवता भी सहायता करते हैं । इस वर्ष वर्षा भरपूर हुई । फिर क्या था, जुहीरी के सारे खेत कुछ ही दिनों में लहलहा उठे ।

अपने परिश्रम को यों सफल होते देखकर जुहीरी और उसके साथी खुशी से फूले न समाये । जुहीरी के साथियों ने सोचा कि यह सब उनके राजा का ही प्रताप है । न वह खेती को इतना महत्व देता, न इतना अधिक परिश्रम करता और न हम सबको भी काम करने की प्रेरणा मिलती । सब ने सोचा इस अवसर पर जुहीरी का अभिनन्दन करना चाहिये ।

फसल काटकर सुरक्षित रखने के दूसरे ही दिन उसके सभी साथियों ने मिलकर एक उत्सव का आयोजन किया । सहभोज के इस अवसर पर जंगल के और दूसरे वर्गों को भी निमन्त्रण दिया गया था । भील, कोल, किरात, शबर, नाग आदि सभी के नेता भी उपस्थित थे । जब उन्हें पता लगा कि जुहीरी ने वर्ष भर के लिये फसल उगाई है तो उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ । क्योंकि अभी तक उस जंगल में कोई भी ऐसा परिश्रमी नेता नहीं आया था जिसने दो महीने से अधिक के लिये अन्न उगवाया हो । बाकी दस महीने वे इधर-उधर फल-फूल मिल जाते तो खा लेते, नहीं तो फिर भूखे ही सो जाते थे ।

शबर आदि सभी नेताओं ने जुहीरी की बहुत प्रशंसा की । उसे अनेक बधाइयाँ दीं, राज्य की उन्नति के लिये शुभकामनायें दीं ।

सबसे अन्त में शुभकामनायें देने की बारी आयी-किरातों की बुड्ढी रानी गुल्लू की, वह बड़ी बुद्धिमान थी, सारा जंगल उसकी सलाह लेता था । गुल्लू ने खड़े होकर जुहीरी को फूलों का हार पहनाया और बोली--'भाई ! तुम्हारे खेत की बंधानें ऊँची हों ।'

इतना कहकर वह अपने स्थान पर वापिस चली गयी ।

औरों की भाँति न उसने जुहीरी की प्रशंसा की थी और न ही ढेरों शुभ कामनायें दी थीं । उसकी इस बात का अर्थ कोई भी न समझ पाया । सभी जंगली जातियाँ एक-दूसरे का मुँह देख रही थीं । जुहीरी के मन्त्री ने उठकर पूछा-'काकी ! हम इसका अर्थ नहीं समझ पाये ।'

'सीधी-सी बात है' गुल्लू काकी कहने लगी-'खेत की बँधान ऊँची होंगी तो उनमें पानी ऊँचा होगा, पानी ऊँचा होगा तो फसल भी ऊँची होगी । फसल ऊँची होगी तो सभी की खाने की चिन्ता दूर होगी । खाने की चिन्ता न रहेगी तो फिर सभी राज्य के विकास की और योजनाओं में लगेंगे, विकास के और कार्य किये जायेंगे तो फिर राज्य भी ऊँचा उठता जायेगा ।'

गुल्लू काकी की यह आख्या सुनकर सभी बड़े खुश हुए । शबरसिंहल कहने लगा-देखो ! बात कहना भी एक कला है । थोड़े से शब्दों में बड़ी बात कहना बुद्धिमानी है । क्योंकि बहुत बोलने वाले की शक्ति तो नष्ट होती है, उसकी वाणी का प्रभाव भी समाप्त हो जाता है ।'

जुहीरी ने हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर गुल्लू से कहा--'काकी ! मैं सदैव यह कोशिश करता रहूँगा ।'

इसके बाद सभी ने नई फसल से बनाये गये बढ़िया-बढ़िया पकवान खाये । फिर खुशी-खुशी सभी मेहमान विदा हुए ।

गुणों का प्रभाव

वाराणसी नगरी के पास एक बहुत बड़ा तालाब था । वह सदा जल से लबालब भरा रहता था । उसमें बड़े सुन्दर-सुन्दर कमल खिला करते थे । मार्च का महीना था । सारा तालाब कमलों से भरा हुआ था । तालाब का पानी कमल के फूल और चौड़े पत्तों से पूरा ढक गया था । किनारे पर उगी घास

भी सुन्दर लगती थी । तालाब के आस-पास कई वृक्ष भी थे । उन पर पक्षी चहचहाया करते थे । मनुष्य भी उसकी छाया में विश्राम करते थे ।

वायु कमल के पराग को दूर तक उड़ा देती थी, इससे फूलों की सुगन्ध चारों ओर फैल जाती थी । उस गन्ध से अनेकों मधु- मक्खियाँ भी आकर्षित हो जाती थीं । उनके झुण्ड आकर कमलों से रस चूसते रहते थे ।

मानी नाम की एक मधुमक्खी वहाँ रोज आया करती थी । इसी प्रकार शीलू भौंरा भी रोज आता था । दोनों एक-दूसरे को आते-जाते, उठते-बैठते देखते थे । धीरे-धीरे दोनों में मित्रता हो गयी । वे घण्टों बैठे कमल का रस चूसते रहते, आपस में बतियाते रहते । जैसे ही सूरज डूबता शीलू फूल से उड़ जाता, क्योंकि उसका घर वहाँ से कई मील दूर था । मधुमक्खी के साथ ऐसी कोई कठिनाई नहीं थी । तालाब के पास ही एक किसान की झोंपड़ी थी । उस झोंपड़ी के पास एक आम का पेड़ था । उसी पर मानी ने अपना घर बना रखा था । किसान भी रानी को बड़ा प्यार करता था ।

एक बार शीलू भौंरे के पंख में चोट लग गयी । मानी बोली-'शीलू भाई ! तुम्हारा घर तो दूर है । तुम्हारे पंख में चोट लगी है । तुम घर कैसे जाओगे ? आज मेरे ही साथ चले चलो ।

शीलू को मानी की यह बात अच्छी लगी । वह धीरे-धीरे उड़ता हुआ मानी के साथ चला । मानी का घर वृक्ष की ऊँची डाल पर था । शीलू वहाँ तक उड़ नहीं सकता था । मानी बोली-'तुम यहाँ पेड़ के नीचे बैठो । मैं तुम्हारे लिये मीठा शहद लेकर आती हूँ ।'

यह कहकर मानी घर्रर से अपने घर चली गयी । भौंरा पेड़ के तले बैठने लगा । वहीं किसान अपने छोटे से बेटे के साथ बैठा था । भौंरे का संतुलन बिगड़ गया और वह किसान के बेटे से जा टकराया । शीलू का डंक उसके गाल से छू

गया और वहाँ खून झलकने लगा । किसान ने हाथ का रूमाल उस पर मारते हुए कहा–'यह न जाने कहाँ से मरने को आ गया है ?'

भौंरा जल्दी–जल्दी जान बचाकर भूखा–प्यासा भागा । उसे बड़ा दुःख हुआ कि वह जहाँ जाता है, सभी उससे भागते हैं, बचते हैं । कोई मनुष्य उसे प्यार से नहीं देखता, बातें नहीं करता । भौंरा निराश होकर तालाब के पास ही एक वृक्ष पर सो गया ।

दूसरे दिन मानी मक्खी उसे खोजते–खोजते वहाँ आई । आते ही बोली–'वाह महाशय ! आप भी खूब हैं । कल हम आपके लिये खाना लेकर आये, खूब ढूँढ़ते रहे और आप नदारद थे ।'

शीलू भौंरे ने दुःखी मन से कल की सारी घटना कह सुनाई । फिर बोला–'मानी बहिन ! एक बात पूछूँ, बुरा तो नहीं मानोगी ?'

'नहीं–नहीं ! बताओ क्या पूछ रहे थे ?' मानी ने कहा ।

मुझमें और तुममें बहुत समानता है । मैं काला हूँ, तुम भी काली हो, मेरे पंख हैं, तुम्हारे भी पंख हैं । मैं डंक मारता हूँ, तुम भी डंक मारती हो । मैं फूलों का रस पीता हूँ, तुम भी पीती हो, पर क्या कारण है कि मैं जहाँ भी जाता हूँ, लोग मुझे हट–हट कहकर भगा देते हैं । तुम्हें तो वे घरों में भी पालते हैं । देखा जाय तो मैं सुन्दर हूँ, पर मेरा इतना अपमान क्यों होता है ? तुम एक तरह से कुरूप हो, फिर भी तुम्हें सब प्यार क्यों करते हैं ? तुम्हें ही क्यों पालते हैं ? भौंरा रोया–रोया सा पूछ रहा था ।

मानी थोड़ी गम्भीर होते हुए कहने लगी–'भाई ! तुम सुन्दर हो तो क्या हुआ ? तुम्हारी सुन्दरता से किसी को क्या लाभ है ? सुन्दरता तो क्षण भर के लिये आकर्षित करती है । वास्तविक और स्थाई आकर्षण तो गुणों का ही है । गुणी ही सम्मान के पात्र बनते हैं । मैं कुरूप हूँ तो क्या ?

मनुष्यों को कितना लाभ पहुँचाती हूँ, यह भी कभी तुमने सोचा है ? मैं जिस शहद को बनाती हूँ, वह उनके हजारों कामों में आता है । मैं डंक मारती हूँ तो क्या समाज के लाभ की बात ज्यादा सोचती हूँ । दूसरों का उपकार अधिक करती हूँ । मेरे बहुत से गुणों से यह एक बुराई भी ढँक जाती है । सच बात तो यह है कि शीलू भाई–गुण ही सौन्दर्य का स्थाई स्थान है । गुणी ही सच्चा प्यार पाता है ।

भौंरा सारी बात समझ गया था । वह भी सोच रहा था कि कैसे वह स्वयं को समाज के लिये उपयोगी बनाये ।

घमण्ड का फल

गंगा, यमुना, काबेरी, गोदावरी आदि अनेक नदियाँ इठलाती हुई चली आ रही थीं । वे कल–कल, छल–छल करके सागर के जल में गिर रही थीं । समुद्र बड़े ध्यान से उनका आना देख रहा था । उसने देखा कि किसी नदी का जल सफेद है, किसी का हरापन लिये हुए, किसी का नीलिमा की झलक लिये । उसने देखा कि नदियों के वेग के साथ कहीं बड़े–बड़े पहाड़ी पत्थर बहे चले आ रहे हैं, कहीं विशालकाय वृक्ष तैर रहे हैं तो कहीं घास, फूल, और पत्ते दीख रहे हैं । समुद्र को उन नदियों के पानी में कभी भी दूब और सरकण्डे दिखाई नहीं दिये ।

गंगा जब पास आयी तो समुद्र ने पूछा–'गंगे, मैं देख रहा हूँ कि तुम सब नदियाँ बड़े–बड़े वृक्षों और पत्थरों को बड़ी सहजता से बहाती लाती हो, पर मैंने किसी के जल में सरकण्डे बहते नहीं देखे । क्या बात है ? वह तुम्हारे रास्ते में नहीं पड़ते या फिर तुम उनसे बहुत छोटा समझकर बात नहीं किया करतीं ।

गंगा बोली–'नहीं स्वामी ! ऐसा नहीं है । सरकण्डों का तो वन का वन हमारे किनारे उग आता है । हम उनसे

कल-कल करके घण्टों बातें भी करते रहते हैं । सरकण्डा छोटा है तो क्या, है बड़ा ही विनम्र । उसे पता है कि किस स्थिति में क्या करना चाहिये ? हमारी लहरें जब तट को तोड़-तोड़कर बहती हैं, जब हमारा जल सरकण्डों तक पहुँच जाता है तो वे झुक जाते हैं । झुकते भी उसी ओर हैं जिस तरफ हमारा बहाव होता है । सरकण्डे की जड़ें गहरी नहीं होतीं, उसका तना भी नहीं होता, पर फिर भी हम उसे नहीं बहा पाते । जैसे ही हमारा पानी उतरता है वह फिर शान से खड़ा हो जाता है और हँसते-हँसते जीता है । तेज हवा चलती है तब भी वह यही करता है ।

'और इतने बड़े-बड़े वृक्ष कैसे ढह जाते हैं ?' समुद्र ने पूछा ।

गंगा बताने लगी—'वृक्ष बड़े घमण्ड से सिर ताने खड़े रहते हैं । हमारा जल उनके तनों से टकराता है तो वे बड़े अभिमान से कहते हैं-अरी लहरो ! भागो यहाँ से, नहीं तो टकरा कर चूर-चूर हो जाओगी । उन्हें अपने बड़प्पन का बड़ा अहंकार है । उसी अहंकार से वे ढह जाते हैं । घमण्डी सदैव ही दुःख पाता है ।'

समुद्र ने सोचा-'वही उन्नति कर पाता है, जो व्यर्थ का अभिमान नहीं करता । चाहे वह रूप का हो, धन का हो या फिर शक्ति का हो-अभिमान सभी बुरे होते हैं

चमत्कारी दीपक की कथा

महात्मा जीलानी की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली थी । उन जैसा विद्वान् और सदाचारी व्यक्ति ढूँढ़े भी न मिलता था । देखा जाता है कि कुछ व्यक्ति विद्वान तो बहुत होते हैं, पर नैतिक आचरण की दृष्टि से गुणी नहीं होते । वे भूल जाते हैं कि ज्ञान की शोभा सदाचरण से ही है । सदाचार के अभाव में ज्ञान भी निरर्थक बन जाता है, पर जीलानी इसके अपवाद थे ।

एक बार महात्मा जीलानी के पास नगर के अनेक संभ्रांत व्यक्ति और सामान्य जन आये । उन्होंने निवेदन किया–महात्मन् ! आप बड़े ज्ञानी हैं । वैसे भी आप धन्य हैं, क्योंकि आपका समय श्रेष्ठ कार्यों में लगता है । आप परोपकार, ईश्वर चिन्तन और सद्ग्रन्थों के अध्ययन में लगे रहते हैं । आपके ज्ञान से हम भी लाभ पा सकें, ऐसा कोई उपाय कीजिये ।

'जीलानी बोले–'पुत्रो ! मेरी कुटिया का द्वार तुम सबके लिये सदैव खुला हुआ है । तुम जब चाहो यहाँ आओ । जिस विषय पर चाहो चर्चा करो ।'

एक नागरिक बोला'–'महात्माजी ! यह ठीक है कि आपके प्रेरणा भरे वचन हमें सन्मार्ग पर ले जाते हैं, हमारा उत्थान करते हैं, पर हम ठहरे गृहस्थ ! परिवार के भरण–पोषण में, समाज के उपयोगी कामों में हमारा सारा समय निकल जाता है । हम जब चाहें तभी तो आपके पास आ नहीं सकते । इसलिये मेरा निवेदन है कि कृपया आप हमारे लिये कोई पुस्तक लिखें, उसे हम कभी भी पढ़ सकते हैं ।'

सभी को यह सुझाव बहुत अच्छा लगा । जीलानी ने भी यह कार्य प्रसन्नता से स्वीकार किया । ज्ञान की उपयोगिता भी इसमें है कि वह किसी के काम आये ।

जीलानी ने नीति सम्बन्धी पुस्तक लिखना प्रारम्भ किया । राजा ने उसके लिये सारी सुविधायें जुटा दीं । दिन में वे बड़े व्यस्त रहते थे । मनुष्यों की सेवा–सहायता में उनका बहुत–सा समय निकल जाता था । उनका विचार था कि अपने लिये तो पशु–पक्षी भी जीते हैं । मनुष्य की सार्थकता तो इसी में है कि वह दूसरों के काम आये । दिन में जब भी थोड़ा–बहुत समय मिलता, वे पुस्तक लिखने बैठ जाते । जीलानी न तो खाली बैठते थे, न ही समय नष्ट करते थे । जिसमें ये दोनों गुण आ जाते हैं, वह सदैव उन्नति करता है । जीलानी सोचते थे कि अधिक सोने से भी समय नष्ट होता है । इतना ही सोना

चाहिये जितना शरीर के लिये आवश्यक है । मनुष्य जैसी चाहे वैसी आदतें डाल सकता है । जीलानी रात में केवल तीन-चार घण्टे सोते थे और आधी रात में, जब सारा संसार सोया होता वे उठकर अपने काम में लग जाते । नित्य कर्म करके वे अपना अध्ययन आरम्भ करते ।

जीलानी के साथ उनके कई शिष्य भी रहते थे । अपने गुरु का वे बड़ा सम्मान करते थे, उनकी सेवा करते थे । गुरु का प्रत्येक कार्य उनके लिये अनुकरणीय था । उनके कार्यों को वे ध्यान से देखते थे ।

एक दिन सारे शिष्य फुसफुसाते हुए आपस में बातें कर रहे थे । वाहिद बोला-'एक चीज देखी तुमने ?'

'क्या ?' जलाल मुहम्मद ने पूछा ।

'अरे वही चमत्कारी दीपक ! जब महात्माजी लिखने बैठते हैं तो वही चमत्कारी चिराग जलाते हैं । जब वे पढ़ते हैं या पूजा करते हैं तो दूसरा सादा दीपक जलाते हैं ।'

साविर जो अब तक धैर्य से उनकी बातें सुन रहा था । बोला-'अच्छा अब बात समझ में आयी कि वे इतना अच्छा क्यों लिखते हैं ? वे जो कुछ लिखते हैं वह सीधा हमारे दिल-दिमाग पर असर डालता है । इसका कारण वही चमत्कारी दीपक है ।'

'और इसीलिये वे इतना जल्दी-जल्दी लिखते जाते हैं । हम तो इतनी देर में बात सोचते ही रह जायेंगे और उनका पूरा पन्ना ही भर जाता है ।' अब्दुल्ला कहने लगा ।

सभी शिष्यों ने तय किया कि चलकर गुरुजी से ही चमत्कारी दीपक के बारे में कुछ अधिक जाना जाय । साविर और नाहिद तो यह भी सोच रहे थे कि महात्माजी से हम उस दीपक को जलाकर लिखने की आज्ञा लेंगे । उसके प्रकाश में हम जो कुछ लिखेंगे वह उतना ही प्रभावकारी होगा जितना स्वयं महात्मा जीलानी का होता है ।

साविर आगे बढ़कर बोला-'गुरुजी, आप वह दीपक

जलाकर ही तो लिखते हैं । जब आप भजन करते हैं या पढ़ते हैं तब तो उसे बुझाकर दूसरा दीपक जलाते हैं ।'

अब जीलानी जी की समझ में सारी बात आ चुकी थी । वे बोले—'पुत्रो ! तुम उन दो दीपकों का रहस्य नहीं समझे । कोई भी दीपक चमत्कार पूर्ण नहीं है । बात सिर्फ इतनी सी है कि जब मैं पुस्तक लिखता हूँ तो वह दीपक जलाता हूँ जिसे राजा साहब ने भेजा है । मुझे लिखने में कोई परेशानी न हो इसलिये उनका दरबारी चिराग, तेल, कागज, कलम आदि दे गया था । जब मैं अपना काम करता हूँ तो उस दीपक को बुझा देता हूँ । तब मैं वह दीपक जलाता हूँ जिसमें घर का तेल होता है ।'

'ऐसा आप क्यों करते हैं ? भला राजा साहब के भेजे दीपक को ही देर तक जला लेंगे तो क्या हानि ? नाहिद ने पूछा ।

जीलानी ने समझाया—'राज्य के कार्य में ही राज्य का धन खर्च होना चाहिये । यदि उसे मैं अपने काम में लगता हूँ तो यह चोरी है । राजकोष तो सीमित होता है, उसकी कौड़ी–कौड़ी जनता के कल्याणं में लगनी चाहिये । जिस देश के मनुष्य राज्य की एक पाई भी अपने ऊपर खर्च करते हैं वह देश उन्नति नहीं कर सकता । इसलिये वह आदमी जो राज्य का पैसा अपने स्वार्थ को पूरा करने में लगाता है, निन्दनीय है ।'

महात्मा जीलानी की बात सुनकर शिष्यों का सिर श्रद्धा से झुक गया ।



विद्या की शोभा—सदाचार

बात १८४४ की है । उस समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की बड़ी प्रसिद्धि थी । वे संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पंडित थे । उनकी ख्याति का कारण केवल उनका ज्ञान ही नहीं था, अपितु सदाचार भी था । वे अपनी विनम्रता, परोपकार, सच्चाई आदि सद्गुणों से सभी के प्रिय बन गये थे । छोटा हो या बड़ा, गरीब हो या अमीर, निर्धन हो या धनवान सभी उन्हें स्नेह करते थे, उनका सम्मान करते थे ।

एक बार कलकत्ता के संस्कृत कॉलिज में संस्कृत—व्याकरण पढ़ाने के लिये एक अध्यापक का स्थान खाली हुआ । स्वाभाविक था कि कॉलेज के प्राचार्य को सबसे पहले ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का ध्यान आता । उन्होंने ईश्वरचन्द्र के पास पत्र भिजवाया । उस पत्र में उन्होंने आग्रह किया था कि वे संस्कृत—अध्यापक का पद ग्रहण करें, इससे कॉलेज गौरवान्वित होगा, उनका आभारी रहेगा ।

ईश्वरचन्द्र के लिये यह एक अच्छा अवसर था । इस पद को ग्रहण करने पर उन्हें अच्छा वेतन मिलता, सम्मान भी मिलता । सभी सोच रहे थे कि अब वे संस्कृत कॉलेज में पढ़ाने लगेंगे । परन्तु उन्होंने पत्र पढ़ा, एक क्षण विचार किया और अपनी असहमति लिखकर भेज दी । उन्होंने लिखा कि आपको व्याकरण पढ़ाने वाले अध्यापक की आवश्यकता है । मैं सोचता हूँ कि व्याकरण में मैं इस नगर का योग्यतम व्यक्ति नहीं हूँ । इस विषय में मुझसे अधिक विद्वान् मेरे मित्र श्री तारक वाचस्पति हैं । यदि उनकी नियुक्ति कर सकें तो मुझे इस बात की बड़ी खुशी होगी कि आपने योग्यतम व्यक्ति का चुनाव किया है ।

कॉलिज के प्रबन्धक के पास ईश्वरचन्द्र का पत्र पहुँचा । उसे पढ़कर उनके प्रति प्रबन्धक का मस्तक श्रद्धा से झुक

गया । वे सोचने लगे कि यह व्यक्ति कितना महान् है ? इसमें अपने ज्ञान का तनिक भी अहं नहीं है । न ही इसे झूठा सम्मान या धन पाने का प्रलोभन है । जो विद्वान् किसी दूसरे व्यक्ति को अपने से बड़ा बताये वह वास्तव में विशाल हृदय है । ईश्वरचन्द्र के प्रस्ताव को कॉलिज की प्रबन्ध समिति ने खुशी से मान लिया । इसकी सूचना उन्होंने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को भी दे दी ।

मित्र की नियुक्ति का समाचार पाकर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को हार्दिक प्रसन्नता हुई । वे तुरन्त मित्र को यह शुभ समाचार सुनाने उनके घर दौड़े चले गये ।

वाचस्पति महोदय को संस्कृत-कॉलिज में अपनी नियुक्ति का समाचार पाकर बड़ा आश्चर्य हुआ, होना भी चाहिये था । उन्होंने तो इस पद के लिये कोई भी आवेदन-पत्र नहीं भेजा था । ईश्वरचन्द्र ने उन्हें सारी घटना सुनाई । वाचस्पति उनकी बात सुनकर गद्‌गद्‌ हो उठे । उन्होंने मित्र को हृदय से लगा लिया और बोले-'ईश्वरचन्द्र तुम्हें देखकर मुझे गर्व है कि आज भी संसार में इतने विनम्र विद्वान हैं, इतने परोपकारी व्यक्ति हैं । केवल ज्ञानी बनना ही महत्व नहीं रखता, विद्वान् की शोभा उसके आचरण से है ।

सफलता का रहस्य

प्राचीनकाल की बात है । संस्कृत के ज्ञाता एक विद्वान् गुरु थे । अपने पांडित्य के लिये वे दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे । देश-देशान्तर से विद्यार्थी उनकी पाठशाला में पढ़ने आया करते थे । उस पाठशाला में जो विद्यार्थी अध्ययन करते थे वह भी ज्ञानी बन जाते थे । इसका कारण था कि गुरु बड़ी तन्मयता से विद्यार्थियों को पढ़ाते थे । वे सबका ध्यान रखते थे ।

उसी आश्रम में वोपदेव नाम का एक छात्र भी रहता था । उसके माता-पिता ने सोचा था कि वह आश्रम में रहकर

विद्वान् बनेगा । गुरु के पास रहकर सदाचारी बनेगा, परन्तु वोपदेव का मन पढ़ाई में नहीं लगता था । गुरु कक्षा में पढ़ाते थे और वोपदेव कभी बाहर देखता रहता था, तो कभी किसी साथी से बातें करता था । उसने सोच लिया था कि मेरे भाग्य में पढ़ना है ही नहीं ।

गुरुजी को बड़ा दुःख होता था कि वोपदेव यदि परिश्रम नहीं करेगा तो मूर्ख ही रह जायेगा । उन्होंने वोपदेव को कई बार समझाया कि बेटा मनुष्य का भाग्य वैसा ही बन जाता है जैसा वह कार्य करता है । विद्यार्थी जीवन, जीवन का स्वर्णकाल है । तुम इस समय जितना श्रम करोगे, उतने ही महान् बनोगे । परन्तु वोपदेव की समझ में गुरु की बातें नहीं आती थीं । उसे तो काम से जी चुराने की आदत पड़ गयी थी । खाली दिमाग शैतान का भी घर होता है । बोपदेव सारे दिन तरह-तरह की शरारत भी किया करता था । एक दिन वोपदेव ने किसी हिरणी के नये पैदा हुए बच्चे को छिपा दिया । हिरणी बेचारी चारों ओर परेशान होकर बच्चे को खोज रही थी, व्याकुल हो रही थी । खोज करने पर बच्चा आखिर एक कुटी में बन्द मिला । पता लगा कि सारी शरारत वोपदेव की है ।

गुरुजी के पास ये सारी बातें पहुँची । उन्हें बड़ा क्रोध आया कि वोपदेव एक तो पढ़ता नहीं है, दूसरे वह प्राणियों को सताना भी सीख गया है । सारे दिन गलत कार्य करता है । उन्होंने वोपदेव को खूब डाँटा और तुरन्त आश्रम से निकल जाने को कहा ।

गुरु की डाँट खाकर वोपदेव को बड़ी ग्लानि हुई । वह खिन्न मन से आश्रम से बाहर निकल गया । वह सोच रहा था कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? गुरु तो मुझसे रुष्ट हैं । इतने क्रुद्ध तो वे कभी नहीं हुए थे । उसके मन में आया कि जाकर गुरुदेव से क्षमा माँगे और कहे कि अब मैं परिश्रमपूर्वक पढूँगा । पर दूसरे ही क्षण वह सोचने लगा कि पढ़ाई तो कठिन है । पढ़ना-लिखना मेरे वश का नहीं है । अब तो मैं पिछड़ भी बहुत गया हूँ । सभी आगे बढ़ गये हैं और मुझे मूर्ख कहकर चिढ़ाते रहते हैं ।

विचारों में मग्न वोपदेव चला जा रहा था । सहसा उसे प्यास लगी । बरगद के वृक्ष के नीचे एक कुए पर अनेक स्त्रियाँ पानी भर रही थीं । वोपदेव उनके पास पहुँचा और थोड़ा पानी माँगा । पानी पीकर उसने देखा कि कुए की जगत पर कई गोल–गोल गड्ढे हैं । गड्ढे किस प्रकार हो गये ? यह वह समझ न पाया । उसने एक महिला से पूछा–'माताजी ! इस पत्थर में ये गड्ढे कैसे पड़ गये हैं ?'

वह स्त्री बोली–'हम सब अपने घड़ों में पानी भरकर पत्थर पर रखती हैं । बार–बार पत्थर पर घड़ा रखने से मिट्टी का घिसाव पत्थर पर पड़ता है और कठोर पत्थर में भी गड्ढा पड़ जाता है ।'

इस बात से वोपदेव के मन पर प्रभाव पड़ा । वह कुछ देर वहीं खड़ा–खड़ा सोचता रहा ।

उस स्त्री ने पूछा–'बेटे ! तुम बड़े उदास से दीख रहे हो, क्या बात है । यहाँ सांझ के झुटपुट में इस तरह अकेले क्यों खड़े हो ? कहाँ जाना है तुम्हें ?'

उस नारी की स्नेहसिक्त वाणी सुनकर वोपदेव की आँखें भर आयीं । उसने सारी कथा सुनाई कि किस प्रकार गुरु के आश्रम से वह निकाल दिया गया है । सारी बात ध्यान से सुनकर महिला ने समझाया–'मुन्ने ! संसार में ऐसा कौन–सा कार्य है जो निरन्तर अभ्यास और लगन से पूरा नहीं होता । इस मिट्टी के घड़े को ही देखो । कहाँ मिट्टी और कहाँ पत्थर ! दोनों की तुलना ही क्या है ? पर निरन्तर अभ्यास से मिट्टी पत्थर में भी गड्ढे बना देती है । तुम भी इसी प्रकार यदि निरन्तर मन लगाकर पढ़ो तो विद्वान् बन सकते हो ।'

'पर मेरे साथी भी मेरा मजाक बनाते हैं, मुझे चिढ़ाते हैं ।' वोपदेव बोला ।

'चिढ़ायेंगे नहीं ? वे तो पढ़–लिखकर कितना सीख गये । तुमने जीवन के तीन वर्ष यों ही व्यर्थ गँवाये । समय बहुत कीमती होता है । जो उसे व्यर्थ करता है वह स्वयं भी बर्बाद हो जाता

है । तुम अभी भी जाओ, गुरु से क्षमा माँगो और मन लगाकर पढ़ो । इसी में तुम्हारा कल्याण है ।' स्त्री कहने लगी ।

महिला की बात सुनकर वोपदेव वहाँ से चल दिया । रास्ते भर वह सोचता रहा कि पत्थर तो बड़ा कठोर होता है, पर घड़ा उसमें भी गड्ढे बना देता है । साथी कहते हैं कि मेरी बुद्धि पत्थर जैसी है । जब पत्थर में भी गड्ढा हो सकता है तो फिर मेरी बुद्धि में पढ़ाई कैसे समझ में नहीं आ सकती । माताजी कहती थीं–'रोज–रोज के अभ्यास से घड़ा पत्थर में गड्ढा डाल देता है । मैं भी मन लगाकर पढ़ूँगा । तब फिर जरूर ही गुरुजी की बातें मेरी समझ में आने लगेंगी । अब तक तो मैं इसलिये पिछड़ा कि पढ़ाई में मन नहीं लगता था । इसलिये पढ़ाई मुझे कठिन लगती थी । अब मैं सच्चे मन से पढ़ूँगा । तब आखिर कब तक मेरी समझ में बात नहीं आयेगी ?'

सोचते–सोचते वोपदेव पाठशाला में आया । वह गुरु के चरणों पर गिर पड़ा । रुंधे हुए कण्ठ से बोला–'गुरुदेव ! मुझ अज्ञानी को क्षमा कीजिये । आपकी बात न मानकर मैंने अपना समय बेकार किया है । अब मैं मन लगाकर पढ़ूँगा ।'

उसकी बात सुनकर गुरु ने प्रसन्नता से उसे गले लगा लिया । वोपदेव ने फिर पूछा––'गुरुजी ! मिट्टी का घड़ा पत्थर में गड्ढा कर देता है । क्या मैं भी रोज–रोज पढ़कर विद्वान् बन सकता हूँ ?'

'हाँ–हाँ क्यों नहीं बन सकते वत्स ! प्रतिदिन मन लगाकर जो काम करते हैं, उसमें जरूर सफलता मिलती है । तब बड़े–बड़े काम भी पूरे हो जाते हैं ।' गुरुजी ने समझाया ।

उसी दिन से वोपदेव ने बड़ी लगन से पढ़ना शुरू कर दिया । थोड़े दिनों में ही वह अपनी लगन से विद्वान् बन गया । ऐसा कौन–सा काम है जिसे पूरा करने की हम कोशिश करें और वह पूरा न हो ।

वोपदेव ने संस्कृत व्याकरण की एक पुस्तक भी लिखी, जिसका नाम है 'मुग्धबोध' । इसमें उन्होंने बड़े सरल–सुबोध ढंग

से संस्कृत भाषा का ज्ञान कराया है । आज भी वे अपने इस ग्रन्थ के कारण प्रसिद्ध हैं ।

निरन्तर अभ्यास और परिश्रम से सभी कार्य सफल होते हैं । वोपदेव की कथा हमें सिखाती है कि व्यक्ति जन्म से महान् नहीं होता । अपने कर्म से, श्रम से, गुण से ही महान् बनता है ।

सच्ची मित्रता

यमुना नदी के किनारे एक बहुत बड़ा जंगल था । उसमें तरह–तरह के पेड़ लगे हुए थे । कोई आम का था तो कोई बबूल का, कोई बरगद का था तो कोई पीपल का । उन पेड़ों पर अनेकों पक्षी रहते थे ।

आम के पेड़ पर एक कोयल रहती थी । उसका नाम था –चित्रा । चित्रा बड़ा ही मीठा गाना गाती थी । तोता, मैना, कौवा, कबूतर, आदि सभी पक्षी सुबह–शाम काम में लगे रहते थे । दोपहर में वे थोड़ा आराम करते थे । उस समय चित्रा सबका मनोरंजन करती ।

चित्रा कोयल में एक और बहुत बड़ा गुण था । वह था सबकी सहायता का, भलाई करने का । एक बार हरियल तोता का पैर टूट गया, तो वह सात दिन तक उसके लिये नीतू लोमड़ी के यहाँ से दवा लाती रही, पट्टी बाँधती रही । चित्रग्रीव कबूतर को बुखार आ गया तो वह उसकी सेवा करती रही । जो भी बीमार पड़ता, चित्रा सभी की सेवा को हाजिर रहती । जो भी दुःख–मुसीबत होती, चित्रा उसे दूर करने को तैयार रहती । यही कारण था कि सभी चित्रा को बहुत–बहुत प्यार करते थे ।

एक बार की बात है । नदी के उस पार से एक बारहसिंगा उस जंगल में आया । चिड़िया, कबूतर, तोता, मैना सभी ने चहचहा कर उसका स्वागत किया । बारहसिंगे ने पेड़ों पर बैठे सभी पक्षियों को एक बार देखा । फिर वह मुँह

फिरा कर चल दिया । जाकर वह नदी किनारे हरी-हरी घास में आराम से बैठ गया ।

उसका यह व्यवहार सभी पक्षियों को बुरा लगा । कबूतर बोला-'कैसा है यह ? हमारी बात का कोई जबाव भी नहीं देता ।' तोता बोला-'घमण्डी है ! इसलिये मुँह फिराकर चल दिया है ।'

मैना बोली-'यह हमारा मेहमान है । चलो, हम एक बार और उसका स्वागत करते हैं ।' फिर वह चित्रा से बोली-'चित्रा दीदी ! तुम बारहसिंगे के स्वागत में सुन्दर-सा गाना गाओ ।' चित्रा मीठे स्वर में गाने लगी ।

बड़े दादा तुम्हारा स्वागत कुहू करते हम सब पक्षी आज कुहू ।
यह भी घर अपना समझो कुहू, मिल-जुलकर रहें हम सब ही कुहू ॥

पर बारहसिंगे पर इसका भी कोई प्रभाव न पड़ा । वह सोच रहा था 'मैं तो बड़ा हूँ, बड़े घर का हूँ । इन छोटे-छोटे पक्षियों से क्यों मित्रता करूँ ?' और वह वहाँ से छलाँग लगाकर जंगल की ओर भाग गया ।

चित्रा को यह बड़ा बुरा लगा । पहले तो उसे गुस्सा आया, पर फिर उसने सोचा कि यह तो उसके माता-पिता की गलती है कि उसे अच्छा व्यवहार करना नहीं सिखाया । चित्रा ने सोचा कि मैं उसे ठीक से व्यवहार करना सिखाऊँगी ।

वह जंगल बड़ा ही हरा-भरा और सुहावना था । खाने को भी वहाँ खूब मिल जाता था । इसलिये बारहसिंगा वहाँ रोज जाता था, पर वह बोलता किसी से नहीं था । अकेला ही झाड़ियों में सींग उलझा-उलझाकर खेलता रहता था । कबूतर, मैना, तोता कोई भी उससे बोलने का प्रयास नहीं करते थे । बोलती तो उससे चित्रा भी नहीं थी, पर उसका आना चित्रा को अच्छा लगने लगा था । वह घण्टों उसके लम्बे घने सींगों को, चंचल कुदानों को देखती रहती थी ।

एक दिन अचानक ही जंगल की शांति भंग होने लगी । खट-खट और धाँय-धाँय की आवाजें सुनाई देने लगीं । तोता, कबूतर आदि सभी घबरा गये । वे अपने पंखों को फड़फड़ा

कर कभी इस पेड़ पर, कभी उस पेड़ पर उड़ने लगे । इतने में कौवा भागा–भागा आया और बोला––'भागो यहाँ से ! दो शिकारी आ रहे हैं । उनके पास बन्दूक भी है । भून डालेंगे हम सभी को ।'

कौवे की बात सुनते ही सभी पक्षी अपने घोंसलों को छोड़–छोड़कर तेजी से नदी के उस पार उड़ चले ।

रास्ते में चित्रा ने देखा बारहसिंगा दौड़ा–दौड़ा उसी जंगल में जा रहा है । चित्रा चिल्लाई–'दादा ! वहाँ न जाना, शिकारी हैं भून डालेंगे ।'

बारहसिंगे ने, जैसी कि उनकी आदत थी, पक्षियों को देखकर भी अनदेखा कर दिया था । चित्रा अभी कह ही रही थी और वह तेजी से छलांग लगाकर आगे बढ़ गया था । चित्रा की पूरी बात भी वह न सुन पाया था ।

जंगल में जाते ही बारहसिंगे ने शिकारियों को देखा । अब उसकी समझ में सारी बात आ गयी । वह तेजी से वहाँ से भागा । उसने पीछे मुड़कर भी न देखा, पर शिकारियों ने उसे भागते हुए देख लिया । फिर क्या था, वे लगे उसका पीछा करने ।

बारहसिंगा अपने को झोंपड़ियों में छिपाकर भागते हुए तंग आ गया, पर अन्त में एक गोली आकर उसके पैर में लग ही गयी । वह बेहोश होकर घनी झाड़ियों के पीछे गड्ढे में गिर पड़ा ।

शिकारी अपने शिकार को ढूँढ़ते–ढूँढ़ते आये । उन्होंने चारों ओर देखा, पर कहीं भी वह दिखायी न दिया । घनी झाड़ियों और गड्ढों ने उनकी दृष्टि से बारहसिंगे को छिपा लिया था । अन्त में वे निराश होकर लौट गये ।

रात होने पर भी जब बारहसिंगा न लौटा तो जंगल के उस पार आम के पेड़ पर बैठी चित्रा को चिन्ता होने लगी । एक बार उसके मन में यह भाव भी आया कि बारहसिंगा जब बोलता तक नहीं, तब फिर क्यों उसकी परवाह की जाये । पर दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि हम सब जीव–जन्तुओं को मिल–जुलकर

रहना चाहिये, एक–दूसरे की सेवा–सहायता करनी चाहिये । सारा आलस्य त्याग कर, नींद से भरी आँखों को खोलकर चित्रा ने अँगड़ाई ली, अपने पंखों को फड़फड़ाया और जंगल की ओर चल पड़ी ।

चाँदनी रात थी । हर जगह चाँदनी छिटकी हुई थी । सभी कुछ साफ–साफ दिखाई दे रहा था । चित्रा ने नदी के किनारे पेड़ों के नीचे हरी–हरी घास पर, झाड़ियों के बीच में सभी जगह घूम–घूम कर बारहसिंगे को देखा, पर कहीं वह दिखाई न दिया । अन्त में निराश हो चित्रा उड़ चली । झाड़ियों के बीच में से वह उड़ रही थी तभी उसकी निगाह उस जगह पड़ी जहाँ बारहसिंगा पड़ा था । वह तुरन्त नीचे उतरी, उसने देखा बारहसिंगा बेहोश पड़ा है । वह अपनी चोंच में भरकर तीन–चार बार पानी लायी और उसे बारहसिंगे के मुँह में डाला । तब कहीं जाकर उसे होश आया ।

आँखें खुलने पर बारहसिंगे ने अपने सामने चित्रा कोयल को देखा । सुबह की घटना उसकी आँखों के सामने घूम गयी । पलभर में उसकी समझ में सारी बात आ गयी । यह सोचकर कि वही चिड़िया मेरी सहायता कर रही है, जिससे मैं बात तक नहीं करता था । बारहसिंगे की आँखों में आँसू भर आये ।

'अभी आयी दादा' कहकर चित्रा उड़ गयी । थोड़ी देर बाद लौटी तो उसकी चोंच में लगी थी हरी–हरी घास और फल । आते ही बोली–'सुबह से भूखे हो, लो खाओ ।'

भूखा तो था ही बारहसिंगा । वह जल्दी–जल्दी खाने लगा । अन्त में उससे न रहा गया और पूछ ही बैठा–"चित्रा बहिन ! एक बात बताओ, तुम मेरी इतनी सहायता, इतनी सेवा क्यों कर रही हो ? मैं तो तुमसे बोलता तक न था । सुबह भी मैंने तुम्हारी बात नहीं सुनी थी ।'

चित्रा मुस्कराई और बोली–'मैया ! हम दूसरों के काम आ पायें, उनकी सहायता कर पायें, इसी में जीवन की सार्थकता है । जो केवल अपने लिये जीते और सोचते हैं वह बड़े तुच्छ होते हैं ।'

बारहसिंगे की समझ में भी बात आने लगी थी । बोला—'हाँ, हम सब को एक ही ईश्वर ने बनाया है । हम सब भाई—बहिन हैं । सभी को मिल—जुलकर ही रहना चाहिये ।'

रात आधी के करीब बीत चुकी थी । चित्रा ने बारहसिंगे से सोने के लिये कहा और स्वयं भी आम के पेड़ पर बने अपने घोंसले में जाकर सो गयी । दूसरे दिन यमुना नदी के उस पार से सभी पक्षी भी वापिस आ गये ।

अब बारहसिंगा, तोता, मैना, कौवा, कबूतर सभी से बड़े स्नेहपूर्वक बातें करता है । किसी को भी उससे शिकायत नहीं रही है । चित्रा कोयल ने नीतू लोमड़ी के यहाँ से रोज दवा ला—लाकर बारहसिंगे को स्वस्थ बना दिया है । वह तो अब उसकी पक्की सहेली ही बन गयी है । दोनों दोपहर को आम की अमराई में बैठे—बैठे बतियाते रहते हैं ।

झगड़े के परिणाम

अभयारण्य में अनु नाम का एक खरगोश रहता था । एक बार उसने सोचा कि घर के आगे बगीचा लगाना चाहिये । इससे हरियाली भी रहेगी, खाने को भी मिलेगा ।

अनु ने खूब मेहनत की । बकरी मौसी के यहाँ से घास लाकर लगाई । गाय दीदी के यहाँ से गाजर—मूली लाकर लगाई । चंचल गिलहरी के यहाँ से लाकर फूलों की पौध लगायी । भैंस काकी से गेहूँ लाकर बोये । तरह—तरह के फूलों के पेड़ भी लगाये ।

खरगोश सारे दिन कड़ी मेहनत करता । सूरज निकलते ही उठ बैठता । बाल्टी लेकर नदी पर जाता, वहाँ से पानी लाता और पौधों में लगाता । दोपहर में उनकी निराई करता । फिर वह बगीचे में बने मकान में दिन भर बैठा रहता । चिड़ियों और चूहों से वह अपने बगीचे की रक्षा करता ।

इस प्रकार कुछ ही दिनों में अनु खरगोश का बगीचा बड़ा हरा-भरा और सुन्दर बन गया ।

अनु खरगोश का एक भाई था । उसका नाम कनु था । वह उसके पड़ौस में रहता था । उसने अनु का बगीचा देखा तो उसका मन ललचा उठा । कनु ने भी अपने घर के सामने वैसा ही बगीचा लगाया ।

अनु और कनु अपने-अपने बगीचे में मचानों पर बैठे रहते थे । पर वे एक-दूसरे से बिलकुल न बोलते थे । दोनों में लड़ाई थी, उन्होंने अपने बगीचों के बीच में मिट्‌टी की एक ऊँची दीवार बना ली थी ।

एक दिन सुबह-सुबह की बात है । अनु अपने बगीचे में पानी लगा रहा था । कनु फल तोड़-तोड़कर टोकरी में रख रहा था । एक कौवा उड़ते-उड़ते आया और दीवार पर बैठ गया ।

कनु की फलों से भरी टोकरी देखते ही उसके मुँह में पानी भर आया ।

कौवे ने सोचा कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे उसे भी कुछ खाने को मिले ।

सहसा कनु का ध्यान कौवे की ओर गया । 'काँव-काँव-काँव करके कौवे न उससे नमस्ते की ।

'नमस्ते भाई' कनु ने कहा । फिर पूछा-'तुम हमारे देश के तो लगते नहीं हो । कहीं बाहर से आये हो क्या भैया ?'

'हाँ मैं तुम्हारे पड़ोसी देश से आया हूँ । वहाँ के राजा का मैं न्यायाधीश हूँ ।' कौवे ने कहा ।

'तुमसे मिलकर मुझे खुशी हुई । मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ भाई !' कनु दाँत निकालते हुए बोला । फिर उसने कौवे को खाने के लिये मीठे-मीठे फल दिये ।

कनु खाना खाने घर के अन्दर चला गया । फल सचमुच इतने स्वादिष्ट थे कि कौवा उन्हें जल्दी-जल्दी खा गया । उनसे उसकी भूख और भड़क उठी ।

तभी कौवे ने पौधों में पानी लगाते हुए अनु को देखा । वह बोला–'अरे भाई ! तुम्हारे पड़ौसी के बगीचे के फल तो बड़े ही मीठे हैं ।'

यह सुनकर अनु को भी जोश आ गया । उसने अपने बगीचे से बहुत से फल तोड़कर कौवे को दिये और कहा–'तुम इन्हें खाओगे तो पहले वाले स्वाद को भूल जाओगे ।

कौवा उन्हें बैठा–बैठा खाता रहा और सिर हिला–हिलाकर उनकी तारीफ करता रहा ।

अनु ने पूछा–'कहो, किसके फल मीठे हैं ।'

'तुम्हारे' कौवे न उत्तर दिया ।

उधर कनु खाना खाकर वापिस आ गया था । उसने अनु और कौवे की बात सुन ली थी । उसे बड़ा गुस्सा आया । उसने खूब सारे फल तोड़े और कौवे से कहा–'तुम पहले प्राणी हो जिसने मेरे फलों की तारीफ नहीं की है । लो और लो ये फल । इन्हें ठीक से चखो, तब न्याय करो कि किसके फल मीठे हैं ।'

कौवे ने अपना पंजा बढ़ाकर फल ले लिये । मन ही मन में वह अपनी चतुराई पर बड़ा प्रसन्न हो रहा था । कनु के फल खाते हुए उसने पहले की ही भाँति सिर हिला–हिला कर उनकी तारीफ की ।

इधर अब अनु को भी जोश आ गया । वह नहीं सह सकता था कि कोई उसके फलों की उपेक्षा करे । कनु के फल मीठे बताये । उसने बहुत से फल तोड़कर कौवे को फिर दिये, जिससे वह ठीक–ठीक न्याय कर सके ।

अब तो यही क्रम चलता रहा । एक बार अनु अपनी बगिया के फल तोड़ता तो दूसरी बार कनु । वे दोनों ही मूँछों पर ताव दे देकर तने बैठे थे । दोनों इस प्रतीक्षा में थे कि जल्दी से उनके फलों को श्रेष्ठ बताया जाये । उनके आस–पास उनकी पत्नी और बच्चे भी घिर आये थे । सभी आतुरता से निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

तभी कौवे को एक उपाय सूझा । वह बोला–'भाइयो ! मैंने पता लगा लिया है कि किसके फल अच्छे हैं, पर यह भी देखना है कि किसके फल कितने दिनों तक ताजा रहते हैं ? तभी मैं निर्णय दे पाऊँगा । मुझे क्षमा करना–अभी तो मुझे न्याय करने दूसरी जगह भी जाना है ।'

'यह कौन–सी कठिन बात है' अनु बोला । ऐसा करते हैं हम दोनों अपने–अपने फल तोड़कर तुम्हें देते हैं । तुम लौटकर हमें बता देना ।'

अनु और कनु प्रशंसा के भूखे थे । दोनों ने थोड़े–थोड़े फल टोकरी में रखे और कौवे को पकड़ा दिये ।

कौवे ने एक पंजे में कनु की टोकरी पकड़ी और दूसरे में अनु की । दोनों को नमस्ते की । दो–चार दिन के बाद आने की बात कही और उड़ चला ।

कौवा मन ही मन बड़ा प्रसन्न हो रहा था । सचमुच आज उसने इतना खाया था कि उड़ा भी नहीं जा रहा था । फिर दोनों पंजों में टोकरियों का बोझ था सो अलग । एक–दो बार उसने सोचा कि इन टोकरियों को रास्ते में ही कहीं रख दे, पर लालच के कारण वह ऐसा न कर सका ।

तभी चलते–चलते कौवा अचानक पहाड़ी से जा टकराया । बोझ के कारण वह संभल न सका लड़खड़ा कर नीचे बहती नदी में जा गिरा ।

अनु और कनु ने आठ–दस दिन तक कौवे का इन्तजार किया । आखिर कनु से न रहा गया । एक दिन वह बोल ही पड़ा–'चलो, ऐसा करते हैं कि हम दोनों एक–दूसरे के फल खाते हैं । फिर ईमानदारी से बतायें कि किसके फल अधिक मीठे हैं । अनु को भी यह सुझाव जँच गया ।

दोनों अपने–अपने फल तोड़कर लाये । पर यह क्या ? खाते ही वे आश्चर्यचकित रह गये । दोनों के फल एक जैसे थे । अब वे कौवे की चालाकी समझ गये थे । 'देखो झगड़ा करने पर दूसरे कैसे ठगते हैं ।' अनु बोला–'हाँ भैया !

मिल–जुलकर रहना ही ठीक है ।' बात उसकी भी समझ में आ गयी । दोनों एक–दूसरे के गले लगे । उन्होंने प्रतिज्ञा की भविष्य में झगड़ा नहीं करेंगे ।

दोनों ने मिलकर यह भी तय किया कि कौवे के आने पर उसकी खबर लेंगे ।

इसी बहाने अनु और कनु में अब बोलचाल भी हो गयी है । दोनों ने मिलकर बीच की दीवार तोड़ दी है । अब वे अपनी–अपनी मचानों पर बैठे बतियाते रहते हैं ।

बुद्धि का चमत्कार

वनराज सिंह न्याय करने के लिये सिंहासन पर बैठे थे । दरवार में भीड़ लगी थी । फैसला सुनने को लोमड़ी, सियार, भालू, बतख, बन्दर सभी उपस्थित थे । दरबार की शोभा निराली थी । वनराज के एक ओर मन्त्री रीछ विराजमान थे । दूसरी ओर सेनापति वानर बैठे थे ।

तभी एक मुर्गी आयी । वह बिलख–बिलख कर रो रही थी । उसकी आँखें लाल पड़ी हुई थीं । पंख टूटे हुए थे । पीठ से रक्त बह रहा था । पंजा आधा टूट गया था ।

मुर्गी की यह करुण दशा देखकर, उसकी चीत्कारें सुनकर सारे दरबार में मौन छा गया ।

'तुम्हारी यह दशा किसने की है ?' मन्त्री रीछ ने खड़े होकर पूछा ।

'महाराज !' मुर्गी सिर झुकाते हुए बोली–'आज मैं बच्चों के लिये खाना जुटाने जंगल के उस ओर चली गयी थी ।

वहीं एक वन–मानुष ने यह दुर्दशा की है ।'

'पर वनमानुष तो हमारे जंगल में कोई है नहीं ।' शेर ने पूछा ।

मुर्गी ने फिर प्रणाम करते हुए कहा–'वह दूसरे जंगल से आया है । कह रहा था कि हमारे राजा तुम्हारे राज्य पर हमला करेंगे । इसी बात पर मेरी उससे चक–चक हो गयी । तभी उसने मेरी यह दुर्दशा की ।'

यह सुनकर सिंह चोंक उठा । वह जानता था कि पड़ौसी जंगल का राजा बड़ा ही खूँखार है । युद्ध में व्यर्थ ही जानवर मरेंगे । अतएव किसी तरकीब से युद्ध रुकवाना चाहिये ।

सिंह ने कुछ समय तक विचार किया । फिर सेनापति वानरदेव के कान में कुछ कहा और उसे वनमानुष के पास भेजा ।

सेनापति बड़ी तीव्र बुद्धि वाला था । वह लम्बी सेना लेकर निकला और रास्ते में प्रधान सैनिकों के कान में न जाने क्या–क्या कहता रहा ।

अपने जंगल की सीमा पर जैसे ही वानर पहुँचा, उसे वनमानुष की गर्जना सुनाई पड़ी–'आ जाओ । लड़ाई के लिये तैयार हो जाओ । अपने महाराज को सूचित कर दो । हमारे राजा सेना सहित आ रहे हैं ।'

वानर कुछ न बोला । कुछ समय बाद उसने देखा कि पड़ौसी सिंह अपनी सेना के साथ हाँफता, पसीने टपकाता हुआ चला आ रहा है । आते ही बोला–'भाई ! पानी पिलाओ, बड़ा प्यासा हूँ ।'

'आपके स्वागत के लिये ही मैं आया हूँ श्रीमान् !' वानर ने कहा । उसने चुटकी बजायी । तुरन्त ही कुछ सैनिक चमचमाते गिलास लेकर आ गये । वे सभी सुन्दर–सुन्दर आवरणों से ढके थे । जैसे ही सिंह ने आवरण

हटाया वह क्रुद्ध हो उठा । पानी की जगह गिलास में मिट्टी और पत्थर भरे पड़े थे ।'

'यह क्या ? सिंह ने भौंहें चढ़ाते हुए पूछा ।

'महाराज ! आप हमारे राज्य पर विजय प्राप्त करने आये हैं न इसीलिये आपके स्वागत में यह मिट्टी रखी गयी है ।'

'अरे जल्दी से हमें पानी पिलाओ । हम सब तेज प्यास से मरे जा रहे हैं ।' सिंह पपड़ी पड़े होठों पर जीभ फिराते हुए बड़ी कठिनाई से बोला ।

वानरदेव ने तुरन्त चुटकी बजाई । अनेक सैनिक ठण्डा शर्बत ले झाड़ियों के पीछे से निकल पड़े । सिंह और उसकी सेना तृप्त होकर शर्बत पीने लगी ।

सेनापति वानर अपनी बुद्धिमत्ता पर मन ही मन मुस्करा रहा था । हुआ यह था कि उसने अपनी सेना पहिले ही सिंह के जंगल में भेज दी । उसने वहाँ नदी के सारे पानी को गन्दा बना दिया था । इसलिये शेर और उसके साथियों को पानी के लिये तरसना पड़ा था ।

वानर ने देखा कि शर्बत पीकर सिंह सन्तोष से अपनी मूँछें पोंछ रहा है । उसने आगे बढ़ते हुए कहा-'राजन् ! चलिये युद्ध शुरू करें ।

'ऐं......युद्ध....सिंह हकलाते हुए कहने लगा । तुमने तो हमारे प्राणों की रक्षा की है । तुम तो हमारे मित्र हुए । जानते हो-मीलों दूर से हम कड़ी धूप में पानी पीने के लिये तरसते-तरसते चले आ रहे हैं । शर्बत पिलाने की जगह यदि तुम लड़ाई शुरू कर देते तो हम कब के मर चुके होते ।'

एक-दूसरे की सहायता करना, मिल-जुलकर रहना हम सभी का धर्म है ।' वानर गम्भीर होते हुए बोला ।

'पर तुमने पहले मिट्टी भरे गिलास क्यों सामने रखे ?' सिंह पूछने लगा ।

'महाराज ! आप हमारी जमीन पर अधिकार करने ही तो आये थे न । जमीन पाकर यदि प्यास बुझ सकती है तो इस मिट्टी से बुझायें । यह बताने-समझाने के लिये ही ऐसा किया गया था ।' वानर बोला ।

वानर की इस बुद्धिमानी पर सिंह की आँखें आश्चर्य से फैल गयीं ।

वानर आगे कह रहा था -'महाराज ! एक-दूसरे की जमीन हड़प कर हम सुखी नहीं रह सकते । जमीन से पेट नहीं भरता । अच्छा यही है कि अपनी-अपनी सीमाओं में रहकर अपने राज्य को सभी प्रकार से सुखी बनायें । यदि आज आप हमसे युद्ध करेंगे तो कल हम आपसे करेंगे । न आपकी प्रजा सुखी रह पायेगी, न हमारी । हम जियें और जीने दें । एक-दूसरे से प्रेम और भाईचारे का ही व्यवहार करें ।

वानर की बात सिंह की समझ में आ रही थी । वह सोच भी रहा था कि युद्ध करना व्यर्थ है । इससे कोई लाभ न होगा ।'

तभी वानर बोला-'वैसे हम युद्ध के लिये भी तैयार हैं । हम डरपोक और कायर नहीं हैं ।

'नहीं--नहीं भाई ! तुमने मेरी आँखें खोल दीं । अब युद्ध की कोई जरूरत नहीं । आज से हम तुम्हारे राजा के मित्र हुए ।' सिंह अपनी अयालों पर हाथ फिराता हुआ बोला ।

तभी वानर के आदेश से एक सैनिक झाड़ियों के पीछे विश्राम कर रहे अपने वनराज सिंह को बुला लाया ।

'आओ मित्र ! तुम्हारा स्वागत है ।' उधर जंगल के सिंह ने अपना पंजा आगे बढ़ाते हुए कहा ।

'नमस्कार, मेरे नये मित्र ! इधर जंगल के सिंह ने भी अपना पंजा आगे बढ़ाकर मिलाया । दोनों मित्र परस्पर गले मिले । सेनापति वानर ने इस अवसर पर प्रीतिभोज भी दिया । फिर इसके बाद दोनों ने एक-दूसरे को अनेक उपहार दिये । फिर वे अपने-अपने जंगल को वापिस चले गये । इस प्रकार वानर और वनराज सिंह की बुद्धिमानी से शत्रु भी मित्र बनकर वापिस लौटा । सच ही है-सोच-विचार कर कार्य करके कोई भी बुरी से बुरी स्थिति पर, बड़ी से बड़ी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है ।

कपट का फल

धूर्ता नाम की लोमड़ी बड़ी चालाक थी । वह सदैव दूसरों का माल झपटने का अवसर ढूँढ़ती रहती थी । वह खुद आलसी थी । सारे दिन ऊँघती रहती थी । घर का काम भी ठीक से नहीं करती थी । उसकी आदतों से घर वाले भी परेशान थे और बाहर वाले भी ।

एक बार धूर्ता लोमड़ी आटा पिसाने निकली । तीन दिन से घर में खाना नहीं बना था । बच्चे बड़े भूखे थे । दो दिन तक तो वह टालती रही थी । पर आज उसे गेहूँ का बोरा पीठ पर रखकर निकलना ही पड़ा ।

रास्ते में धूर्ता को प्रीतू खरगोश मिला । वह थैला लटकाये गाजर खरीदने जा रहा था । 'नमस्ते काकी' प्रीतू बोला ।

'नमस्ते बेटा !' धूर्ता मुँह लटकाये बोली ।

'अरे काकी ! आज तुम इतनी उदास क्यों हो ?' क्या तुम्हारी तबियत ठीक नहीं ?' प्रीतू ने पूछा ।

'क्या बताऊँ बेटा ! पूरे दो दिन से पेट में अन्न का एक दाना भी नहीं पड़ा है ।' काकी कराहते हुए बोली ।

'चलो काकी, आज मेरे यहाँ भोजन करना ।' खरगोश बोला ।

'पर तुम तो कहीं बाहर जा रहे हो ?' काकी अनजान बनती हुई बोली ।

'नहीं मैं तो गाजर खरीदने जा रहा हूँ ।' प्रीतू ने उत्तर दिया ।

तभी अचानक धूर्ता की निगाह रीछ के बगीचे पर पड़ी । उसमें लाल-लाल टमाटर और हरी-भरी गाजर लगी हुई थी । फिर क्या था वह वहीं रुक गयी । उसने अपनी पीठ से अन्न की बोरी उतारी । फिर प्रीतू से बोली-'अरे भाई ! सब्जी वाले की दुकान तक क्यों जाते हो । देखो तो यहाँ कैसी अच्छी गाजर हैं । आज यहीं से ले लो ।'

'पर काकी बिना पुछे गाजर तोड़ना तो चोरी होगी । मैं ऐसा बुरा काम नहीं करूँगा ।'

सहसा ही लोमड़ी की तेज बुद्धि में एक उपाय आया । वह बोली-'अरे रे ! बिना पूछे क्यों लेंगें । खेत से पूछ कर गाजर तोड़ेंगे ।

'खेत भी बातें करता है ।' प्रीतू ने पूछा ।

'हाँ-हाँ देखो, बोलेगा ।' धूर्ता बोली ।

फिर उसने ऊँची आवाज में खेत से पूछा-'खेत भइया ! हम बड़े भूखे हैं । कहो तो गाजर तोड़ लें ।'

इसके कुछ पल बाद वह आवाज बदलकर बोली-'तोड़ लो, बहिन भूख मिटा लो ।'

प्रीतू कुछ दूरी पर पेड़ के नीचे खड़ा था । अतः वह लोमड़ी की चालाकी समझ नहीं पाया । उसने सोचा जरूर खेत ने उत्तर दिया है ।

लोमड़ी ने जी भरकर गाजर तोड़ी । खरगोश का पूरा थैला गाजरों से भर गया । अब लोमड़ी के मुँह में पानी भर आया । उसने सोचा किसी प्रपकार खरेगोश को यहाँ से भगाना चाहिये । तब सारी गाजरें खाने को मिलेंगी । मेहनत

मैंने की है–खरगोश इन्हें क्यों खाये ?

धूर्ता कराहते हुए प्रीतू से बोली–'भाई मेरे बड़ा दर्द हो रहा है । मुझसे तो अब चला नहीं जा रहा । तुम यदि यह गेहूँ पिसवा लाओ तो मेरा बड़ा उपकार हो । तब तक मैं यहाँ पेड़ की छाँह में बैठी हूँ ।'

प्रीतू बड़ा परोपकारी था । तुरन्त बोल पड़ा–'अभी पिसवा कर लाया काकी ! तुम यहाँ बैठो ।'

खरगोश ने पीठ पर बोरा रखा और चल पड़ा चक्की की ओर जैसे ही वह आँखों से ओझल हुआ, लोमड़ी ने बगीचे के बीच में बैठकर गाजर खाना शुरू कर दिया ।

'पर यह क्या ? अभी दो–चार गाजर ही खायी थीं कि झाड़ी के पीछे से रीछ घूमता हुआ निकल आया । जैसे ही उसकी निगाह धूर्ता पर, गाजरों से भरी उसकी टोकरी पर पड़ी तो वह गुस्से से भर उठा । लोमड़ी को फटकारते हुए बोला–'अरी धूर्ता ! तुझे दूसरों की चीज चुरा कर खाते शर्म नहीं आती ।'

'मैंने चुराई नहीं ये गाजर । मैंने ये खेत से पूछकर ली हैं ।' धूर्ता अकड़कर, अपनी गर्दन तानकर बोली ।

'अच्छा–अच्छा मैं भी खेत से बातें करता हूँ ।' रीछ बोला । वास्तव में हुआ यह था कि रीछ झाड़ी के पीछे खड़ा लोमड़ी और खरगोश की सारी बातें सुन रहा था । उसे भी एक तरकीब सूझी ।

'खेत भाई ! क्या इस चोर और निकम्मी लोमड़ी को दण्ड दूँ ।' रीछ ने पूछा ।

'जरूर दो–जरूर !' आवाज बदल कर रीछ ने फिर कहा ।

इसके बाद लोमड़ी से रीछ ने गाजर की टोकरी छीन ली । फि एक बाल्टी धूर्ता को पकड़ाते हुए कहा–'लो यह बाल्टी और कुँए से पानी खींच–खींचकर बगीचे की सिंचाई करो । जब तक काम पूरा नहीं करोगी तब तक तुम्हारा

छुटकारा नहीं है ।'

'मरता क्या न करता' वाली बात हुई । वह विवश होकर बाल्टी उठाकर कुएँ की ओर चली । धूर्ता जानती थी कि बिना काम किये रीछ से छुटकारा पाना सम्भव नहीं है ।

कुएँ से पानी खींच-खींचकर धूर्ता की कमर दुखने लगी । एक बाल्टी, दो बाल्टी, दस बाल्टी.... बीस बाल्टी पानी उसने खींचा तब कहीं सिंचाई पूरी हुई । निकम्मी और आलसी लोमड़ी के लिये यह दण्ड बहुत बड़ा था । उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब ऐसी चालाकी कभी नहीं करेगी । ईमानदारी और परिश्रम की कमाई ही ग्रहण करेगी ।

सच्ची सिद्धि

गंगा के तट पर एक साधु रहता था । वह अपनी कुटिया में बैठा जप करता तो कभी विविध आसन लगाता था । अन्य यौगिक साधनायें किया करता था । धीरे-धीरे साधु को अपनी साधना पर गर्व होने लगा । वह अपने आगे सभी को तुच्छ समझने लगा ।

साधु की कुटिया के सामने एक मल्लाह भी रहता था । चाहे वर्षा हो, चाहे कड़ी धूप हो, चाहे बदन को कँपाने वाली ठण्ड हो-वह सदैव नाव चलाया करता था । सारे दिन कठोर परिश्रम करके वह अपना और अपने बच्चों का पेट भरता था ।

साधु मल्लाह को बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखता था । वह उसे उपदेश देता था-'अरे मूर्ख ! तू अपना जन्म यों ही व्यर्थ गँवा रहा है । न कोई योग करता है, न कोई जप ।'

मल्लाह साधु की बात सुनता था और चुप रह जाता था । वह जानता था कि अपनी साधना से साधु ने एक सिद्धि प्राप्त की है और वह है जल पर चलने की । कई बार जनसमुदाय के मध्य वह इसका प्रदर्शन कर चुके थे । लोग

उनकी प्रशंसा करते नहीं अघाते थे ।

एक बार गंगा नदी में भयंकर बाढ़ आ गयी । लहरें उफन-उफन कर आगे बढ़ने लगीं । सागर की लहरों-सी ऊँची-ऊँची लहरें पल भर में सभी कुछ ढहाने को तैयार हो गयीं । चारों ओर बड़ी तेजी से पानी बहने लगा । मल्लाह की झोंपड़ी भी पानी के बहाव में बह गयी । बाल-बच्चों को पहिले ही उसने एक ऊँचे से पेड़ पर बिठा दिया था । वह स्वयं तैर-तैरकर लोगों को पानी से निकालने में जुटा हुआ था ।

एकाएक मल्लाह को दूर से साधु की चीखें सुनाई पड़ीं-'बचाओ-बचाओ ।' मल्लाह ने देखा कि साधु जल में डूब रहा है । वह तेजी से उधर तैरने लगा । बड़ी फुर्ती से उसने साधु को डूबने से बचाया और पीठ पर लाद कर किनारे पर लाया ।

साधु के पेट और मुँह में पानी भर गया था । बड़ी देर तक मल्लाह उसे निकालने का प्रयास करता रहा । कुछ देर बाद साधु की बेहोशी टूटी और वह उठकर बैठ गया । अपनी मेहनत सफल होते देख मल्लाह बड़ा प्रसन्न हुआ । साधु के पैर छूते हुए बोला-'महाराज ! मेरे धन्य भाग, यह नाचीज शरीर आपके काम आया ।'

साधु को मल्लाह से सारी बातें पता चलीं । मल्लाह ने पूछ ही लिया-'महात्मन् ! आपको तो जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त है, फिर आप कैसे डूबने लगे थे ?'

'अरे ! कैसी तो गज-गज भर ऊँची लहरें तेजी से बढ़ती चली आ रही थीं । उनमें मेरी सिद्धि क्या काम आती ?' साधु बोले ।

साधु को पश्चात्ताप होने लगा कि व्यर्थ अब तक वे मल्लाह को दुत्कारते रहे थे । यदि यह तैरकर उनकी रक्षा न करता तो सिद्धि का अहं कब का प्राण ले चुका होता ।' उनका कण्ठ गद्‌गद् हो गया और वे मल्लाह से बोले-'भाई !

आज मैं समझ गया कि सच्ची सिद्धि वही है, जिससे हम दूसरों का भला कर पायें । सिद्धि का अर्थ भीड़ इकट्ठी करके चमत्कार दिखाना नहीं है ।..........मैंने इतने वर्ष व्यर्थ ही गँवाये । मुझसे बड़े साधक तो तुम हो जो दूसरों का भला करते हो ।' यह कहकर साधु जन–कल्याण का संकल्प लेकर खड़े हुए और 'हरि ॐ' कहकर लोकसेवा के लिये, पीड़ितों को राह दिखाने के लिये चल पड़े ।

फूल देश की यात्रा

आज फिर वही हुआ, छह वर्ष की नन्हीं रंजू चुपचाप मम्मी की आँख बचाकर बाग में निकल गयी । फिर उसने मन भरकर खूब फूल तोड़े । गुलाब, गेंदा, चमेली, हारसिंगार, बेला के ढेर सारे फूलों से उसकी टोकरी भर गयी । तब रंजू दबे पैरों अपने कमरे में चली गयी ।

टोकरी जमीन पर रखकर वह भी फर्श पर बैठ गयी । सुई–धागा लेकर हारसिंगार के फूलों की दो मालायें बनायीं । एक गुड़िया को पहनाई और दूसरी गुड्डे को । गेंदे के फूलों को तोड़–तोड़कर उनकी पत्तियों से उनका सिंहासन सजाया । गुलाब की नन्हीं कली गुड्डे के कोट में लगायी । चमेली की छोटी–सी कली गुड़िया के जूड़े में सजाई ।

अभी रंजू की सज्जा चल ही रही थी कि मम्मी आ धमकी । वह हड़बड़ा उठी । रंजू को लगा कि उसकी मम्मी तो पूरी ही जासूस है । मम्मी की निगाह जमीन पर पड़े फूलों के ढेर पर गयी । उसे देखते ही उन्हें गुस्सा आ गया और बोलीं–'देखो रंजू ! तुम्हें लाख बार समझाया है कि फूल न तोड़ा करो, पर तुम सुनती ही नहीं । तुम हमारी बात न मानोगी तो हम तुमसे बोलेंगे ही नहीं. हमारी तुम्हारी कुट्टी ।'

रंजू जानती है कि मम्मी को फूल तोड़ना बहुत बुरा लगता है । वे कभी अपने जूड़े में भी फूल तोड़कर नहीं लगाती हैं । रंजू से भी यही कहती हैं कि जो फूल अपने आप टूटकर गिर जावें उन्हें ही उठाओ । फूल तो पौधों पर ही सुन्दर लगते हैं, पर रंजू को आदत पड़ गयी है कि जैसे ही वह खिलते हुए फूलों को देखती है, उसका हाथ उन्हें तोड़ने के लिये बढ़ जाता है । वह बार–बार सोचती है कि मम्मी की बात मानेगी । अब कभी फूल तोड़ेगी नहीं । परन्तु उन्हें देखते ही वह सब कुछ भूल जाती है ।

रंजू ने फूलों के उस ढेर से अपने गुड्डे–गुड़िये को खूब सजाया । उनकी छटा देख–देखकर वह खूब मुग्ध हुई । पर उन्होंने उससे बात तक न की । रंजू की आदत है मम्मी से कहानी सुनते–सुनते सोने की । उसने मम्मी से कहानी सुनाने को कहा तो उन्होंने करवट बदल ली । वह चुपचाप उतरकर दूसरी ओर से जाकर उनसे लिपटते हुए बोली–'मम्मी ! कहानी सुनाओ न ।' पर उन्होंने उसका हाथ झटक दिया । वे यह कहकर कमरे से चली गयी–'हम फूल तोड़ने वाले गन्दे बच्चों से बात नहीं करते ।'

रंजू को रोना आ गया । रोते–रोते उसकी आँख लग गयी । कुछ समय बाद उसने पाया कि एक सुन्दर–सी परी उसके सिरहाने खड़ी है । उसके वस्त्र सोने–चाँदी के बने हैं । परी रंजू से प्यार से पूछने लगी–'क्या तुम फूलों के देश चलोगी ?'

रंजू फौरन बोल पड़ी–'हाँ–हाँ चलूँगी ।' परी ने रंजू की उँगली पकड़ी और आकाश में उड़ चली । उसे समझा दिया कि उंगली कसकर पकड़े रहे । रंजू ने मजबूती से उंगली पकड़ ली । वे रुई से सफेद, गुदगुदे बादलों को पार करती आगे बढ़ीं । इन्द्र धनुष के भव्य द्वार के उस पार फूलों के राजा का महल था । जल्दी ही दोनों वहाँ तक पहुँच गयीं ।

उस महल को देखकर रंजू दंग रह गयी । ऐसा लग रहा था मानो फूलों से महकता ताजमहल बनाया गया हो । चमेली के फूलों से बने द्वार पर अनेक लाल गुड़हल प्रहरी खड़े हुए थे । परी ने उनसे अन्दर घुसने की अनुमति माँगी । अन्दर घुसने पर रंजू ने देखा कि महल की सारी दीवारें सूरजमुखी के फूलों से बनी थीं । छतें गेंदे से बनायी गयी थीं । बहुत से कमरों को दिखाने के बाद परी रंजू को राजा रानी के दर्शन कराने ले गयी । रास्ते में पड़ा दो–तीन मील लम्बा मैदान । इसमें दोनों ओर कतारों में आम, संतरा आदि फलों के वृक्ष खड़े थे । रंजू के मुँह में उन्हें देखकर पानी भर आया । परी ने जमीन पर गिरा सुर्ख लाल सेव उसे पकड़ा दिया । वह उसे कुतरती–कुतरती आगे बढ़ी ।

एक बड़े से कमरे के द्वार पर परी रुक गयी द्वार पर खड़े प्रहरी उन्हें अन्दर ले गये । सामने ही बेला और लिली से बने दो भव्य सिंहासन थे । उन पर राजा कमल और महारानी गुलाब विराजमान थे । सहसा ही राजा–रानी की अंगरक्षिका जूही सामने आयी और डाँटकर बोली––'रंजू ! बोलो तुम क्यों फूल तोड़ती हो ?' राजा–रानी का ध्यान भी सहसा उसकी ओर चला गया । न्यायमंत्री हारसिंगार ने आगे बढ़कर निवेदन किया–'महाराज ! इस लड़की में फूलों को तोड़ने की गन्दी आदत है । यह अकारण ही हम सबको तंग किया करती है, इसे दण्ड दिया जाये ।' महाराज को भी सारी बातें याद आ गयीं । उन्होंने आदेश दिया–'जब तक यह लड़की वायदा न कर ले कि आगे से कभी फूल नहीं तोड़ेगी, उसे हमारे रहने के तालाब में डूबा रहने दिया जाये ।'

यह आदेश सुनकर रंजू भयभीत हो उठी । वह तुरन्त महाराज के पैरों पर गिर पड़ी और आगे से कभी फूल न तोड़ने का वचन दिया । पर रानी गुलाब अभी शान्त नहीं हुई थी । उनके आदेश से अंगरक्षक उसे घसीटते हुए बाहर ले आये और फिर वहाँ से धक्का दे दिया ।

चोट लगने से रंजू चीख पड़ी । वह उठकर बैठी तो पाया कि पलंग की बजाय जमीन पर पड़ी है । सूरज की सुनहरी किरणों से कमरा चमक रहा था और उसका छोटा भाई अपने खिलौनों से खेल रहा था ।

रंजू की आँखों के आगे काफी देर तक फूलों का महल ही तैरता रहा । । वह समझ नहीं पायी कि यह सपना था या सच । जो भी हो, अब उसने फूल तोड़ना बिल्कुल छोड़ दिया है । अब मम्मी भी उससे नाराज नहीं होती ।

अन्धानुकरण

बहुत दिनों की बात है । भारतवर्ष में गंगा नदी के तट पर हिरण्याभ नाम का एक साधु रहता था । उसने अपना घर–परिवार सभी त्याग दिया था । वह अकेला ही वन में रहता था और भगवान का भजन करता था । उस साधु में अनेक गुण थे । जैसे वह दूसरों की सहायता करता था, प्राणी मात्र पर दया करता था । पर उसमें एक बड़ा अवगुण भी था और वह था–लालच । उसने बहुत–सी स्वर्ण मुद्रायें अपने पास जमा कर रखी थीं । न तो वह उन्हें किसी को देता ही था और न स्वयं उस धन का कोई उपयोग करता था ।

एक बार वह साधु सोचने लगा कि मेरी आयु बहुत हो गयी है । पता नहीं कब मृत्यु का ग्रास बनना पड़े । अतएव एक बार सभी तीर्थों की यात्रा कर आनी चाहिये । इसी बहाने परोपकार भी हो जायेगा । वस्तुतः प्राचीन भारत की प्रथा थी कि संन्यासी तीर्थों में एकत्रित जन समुदाय को उपदेश देते थे । उनकी विविध समस्याओं को सुलझाने का प्रयास भी करते थे । इस प्रकार से वे जन–कल्याण भी करते थे ।

हिरण्याभ ने यात्रा की पूरी तैयारी कर ली । अपने वस्त्र और सत्तू एक पोटली में बाँध लिये । धार्मिक पुस्तकें, जप करने की माला आदि भी रख लीं । अपनी स्वर्ण मुद्राओं की थैली भी उसने पोटली में छिपाकर रख ली । पीठ पर पोटली लादे, एक हाथ में कमण्डल और एक हाथ में लाठी लेकर वह गंगा नदी के किनारे-किनारे पदयात्रा करने लगा ।

इस प्रकार मार्ग में रुकते-रुकते वह साधु कुछ दिनों बाद सात ऋषियों की तपस्थली सप्त सरोवर में जा पहुँचा । वहाँ एक-दो दिन रुकने के बाद उसे बद्रीनाथ जाना था । अब तक का रास्ता तो सीधा सादा था । वह गंगा के किनारे-किनारे चलता रहा था । मार्ग में अनेक तीर्थयात्री भी मिलते रहे थे । पर अब उसे पहाड़ों की दुर्गम चट्टानें चढ़नी थीं । रास्ते में बहुत से यात्रियों के मिलने की आशा भी नहीं थी । हिरण्याभ ने सुन रखा था कि पहाड़ी कन्दराओं में उनके घने वनों में लुटेरे छिपे रहते हैं और रास्ता चलते यात्रियों को लूट लेते हैं । उसे अपने धन के विषय में चिन्ता होने लगी । वह समझ नहीं पा रहा था कि धन का क्या करे ? कहाँ रखे ? साथ ले चलने से तो डर था कि डाकू कहीं धन के लोभ से उसके कहीं प्राण ही न ले लें । जहाँ साधु रुका था वह स्थान भी उसके लिये नया था । सभी व्यक्ति अपरिचित थे अतएव वह किसी को धन सौंपकर भी नहीं जा सकता था ।

कई दिनों तक सोच-विचार करने के बाद हिरण्याभ को सहसा अद्‌भुत उपाय सूझा । दूसरे दिन वह रात्रि के द्वितीय पहर में ही उठ बैठा । गंगा के किनारे जाकर नित्यकर्म से निवृत्त हुआ । स्नान-ध्यान आदि किया । फिर वह नदी के बालुकामय तट पर निर्जन स्थान की ओर बढ़ता ही गया । लगभग दो-ढाई मील चलने के बाद हिरण्याभ रुका । उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई । अभी भी अन्धेरा-सा छाया था । वह स्थान जन-शून्य था । हिरण्याभ ने बालू में दो हाथ गहरा

गड्ढा खोदा । फिर स्वर्ण मुद्राओं की थैली निकाल कर चुपचाप उसमें रखी । ऊपर से बालू से उसे पाटा । फिर उसके ऊपर गंगा के काले–काले पत्थर चुनकर बालू और पत्थरों से ऊँचा–सा शिवलिंग बनाया । पुष्प आदि से उसकी पूजा की । फिर हिरण्याभ खुशी–खुशी आगे तीर्थयात्रा पर बढ़ गया ।

हिरण्याभ तो चला गया । चार–पाँच दिन बाद तीस–चालीस यात्रियों का दल वहाँ से निकला । उस दल में श्रेष्ठ बुद्धि नाम का वणिक भी था । उसकी दृष्टि पत्थर और बालू के बने शिवलिंग पर पड़ी और यात्रियों को वहीं रुका लिया और बोला–'अरे देखो ! इस स्थान पर किसी ने शिवलिंग बनाया है । इसकी पूजा भी की है । चलो हम सब भी ऐसा करें, इससे निश्चित ही पुण्य मिलेगा ।

फिर क्या था । सभी यात्री जुट पड़े । एक ही घण्टे में वहाँ वैसे ही उतने ही बड़े चालीस शिवलिंग दिखाई देने लगे । फिर तो यात्रियों का जो भी दल आता वह ऐसे ही शिवलिंग बनाता, उनकी पूजा करता फिर आगे बढ़ता ।

लगभग एक महीने बाद हिरण्याभ तीर्थयात्रा से वापिस लौटा । परन्तु यह क्या ? जहाँ धन गाढ़ा था, उस स्थान को देखकर तो वह दंग रह गया । दो–तीन मील के घेरे में एक से सैकड़ों शिवलिंग बने हुए थे । यह पता लगाना भी बड़ा कठिन था कि उसका शिवलिंग कौन–सा है । हिरण्याभ का सिर चकराने लगा और वह वहीं बैठ गया ।

वह बहुत देर तक शिवलिंगों के उस मेले को देखता रहा । सूर्यास्त हो चला था । किनारे पर बहती हुई गंगा कलकल करके मानो उससे कुछ कहना चाह रही थी । वह सोचने लगा–'देखो किसी ने ठीक ही कहा है कि वह धन नष्ट हो जाता है जिससे हम न तो दूसरों का भला करते हैं, न अपने लिये उसका उपयोग करते हैं । मैं तो संन्यासी हूँ ।

मुझे तो धन के लोभ में पड़ना ही नहीं चाहिये । भगवान ने मुझे शिक्षा देने के लिये ही यह सब किया है ।'

इस आत्मबोध से हिरण्याभ का सारा दुःख दूर हो गया । वह कमण्डल और डण्डा लेकर फिर खुशी-खुशी आगे की यात्रा पर बढ़ गया ।

बँटवारा

एक किसान था । उसके दो बेटे थे-चोखे और अनोखे । उन दोनों में आपस में बिलकुल भी न बनती । किसान उन्हें बहुत समझाया करता था कि आपस में मिल-जुलकर प्यार से रहना चाहिये । उस समय तो दोनों सोचते कि ऐसा ही करेंगे । फिर यह भूल जाते और लड़ने-झगड़ने लगते ।

एक बार किसान बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गयी । तेरह दिन तक तो दोनों भाई साथ-साथ ही रहे, पर पिता की तेरहवीं के बाद ही बड़ा भाई कहने लगा- 'अनोखे ! देखो पिता तो रहे नहीं । अब हमारा रहना भी बड़ा मुश्किल है, जाओ ! घर में जो कुछ है उसे हम आधा- आधा बाँट लें ।'

यों चोखे अलग होने की इतनी जल्दी न करता, पर इस बीच बहुत से पड़ौसी उसके कान भरते रहे थे । कुछ व्यक्तियों का यह स्वभाव ही होता है कि बिना मतलब दूसरों की बुराई किया करते हैं । उनके घर फूट डलवाते हैं । पड़ौसी कहते-'भाई अनौखे तो मूर्ख और आलसी है । वह आराम से बैठकर खायेगा । अच्छा हो उसे तुम अलग कर दो । जी में आये तो काम करे या न करे ।

'पर हमारे पास इतना सामान कहाँ है कि उसका बँटवारा करके फिर आराम से रह सकें ।' चोखे ने पूछा ।

'कल्लू काका ! जो बँटवारा करने के लिये दूसरों को लड़ाने–भिड़ाने के लिये प्रसिद्ध थे । आँख झपककर बोले–'दोस्त ! कुछ मिले तो कल्लू काका ऐसा बँटवारा करायेगा कि तुम जीवन भर उसके गुण गाते रहो ।'

चोखे उस बात पर तैयार हो गया था । इसीलिये उसने आज अनौखे को बँटवारे के लिये बुलाया था । अनौखे पिता की मृत्यु से यों भी बड़ा दुःखी था । वह चुपचाप उदास आकर बैठ गया ।

चोखे ने उससे अलग होने की बात कही तो वह रोने लगा । बोला–'भैया ! पिता के बाद एक तुम्हीं तो मेरे लिये बड़े रह गये हो । मुझे अलग न करो ।'

अनौखे की बात अनसुनी करते हुए चोखे कहने लगा–'साथ रहने की बात तो पिता के साथ ही गयी । हम दोनों बड़े हैं, समर्थ हैं । तुम अपना अलग कमाओ–खाओ । घर के सामान में से बताते जाओ, क्या लोगे ? आधा–आधा सामान बाँट लेते हैं ।

यह सुनकर अनौखे रोने लगा । वह था भी सीधा । रुँधे कण्ठ से बोला–'भाई ! जो भी चाहो दे दो ।'

अब तो चोखे और कल्लू काका का काम बड़ा सरल हो गया । चोखे बनावटी उदासी अपने चेहरे पर लाकर कल्लू काका से कहने लगा–'काका ! दुःख की इस घड़ी में मेरे हाथ–पैर तो चलते नहीं । तुम ही बँटवारा कर दो हम दोनों उसे मानेंगे ।

कल्लू काका ने तुरन्त अच्छा–अच्छा माल चोखे के हिस्से में कर दिया । बच गये–बस एक कुत्ता और गाय । समस्या थी इनका बँटवारा कैसे किया जाये ?

कल्लू काका बोला–"ऐसा करो, एक इनका पीछे का भाग ले लो एक आगे का ।'

चोखे ने अनोखे से पूछा–'बताओ भाई तुम कुत्ते का आगे वाला भाग लोगे या पीछे वाला ? वह जानता था कि अनौखे

कुत्ते को बहुत प्यार करता है । वह उसका आगे वाला भाग ही माँगेगा ।

चोखे का सोचना सच हुआ । अनोखे ने कुत्ते का आगे का भाग ही माँगा और उसके सिर पर हाथ फिरा कर उसे प्यार करने लगा । चोखे कहने लगा–'तो फिर गाय का भी तुम आगे वाला भाग ही लोगे ।

अनौखे तब उसकी बात का मतलब समझ पाया । दूसरे दिन जब वह गाय का दूध दुहने लगा तो चोखे ने झिड़क दिया–'क्यों रे ! कैसे निकाल रहा हैं तू दूध । गाय का पीछे वाला भाग तो मेरा है, इसलिये दूध पर मेरा अधिकार है ।

अब होता यह कि गाय और कुत्ता दोनों को ही खाना तो अनौखे खिलाता । कुत्ता तो जरूर उसके घर की रखवाली करता था, पर गाय से उसे कोई लाभ न था । घर का सामान भी उसे कम मिला था । इसलिये उसे परेशानी उठानी पड़ रही थी ।

एक सप्ताह बाद अनौखे की पत्नी वापिस आयी । घर आकर उसे बँटवारे का किस्सा पता लगा तो उसने अपना सिर ठोक लिया । वह जानती थी कि उसका पति बहुत सीधा है । बड़े भाई के आगे कुछ बोलता भी नहीं है । परन्तु चुनिया ने सोचा कि इस तरह की धोखाधड़ी सहना कहाँ का न्याय है ? अन्यायी के सामने सिर झुकाना कायरता है । सही न्याय होना ही चाहिये ।

दूसरे ही दिन वह अपने पति को समझा–बुझाकर पंचायत में ले गयी । गाँव के मुखिया ने सारी बातें बड़े ध्यान से सुनीं । फिर चोखे को यह आज्ञा दी–'आज से तुम दोनों बँटवारे का भाग बदल लोगे । तुम अनौखे का भाग लोगे, अनौखे तुम्हारा ।'

यह सुनकर चोखे घबरा गया । वैसे भी वह भाई को अलग करके उसका फल भुगत चुका था । जिन्हें वह मित्र समझता था वे ही किसी न किसी बहाने उससे धन ऐंठने लगे

थे । अनौखे के बिना खेती सँभालना भी मुश्किल हो रहा था । पहले तो दोनों मिल–जुलकर काम करते थे तो कुछ पता नहीं लगता था । वह पछताता था कि बेकार में उसने लोगों की बातों में आकर अपने भाई को कामचोर मान लिया था ।

चोखे ने मुखिया के पैरों पर गिरते हुए कहा–'मुझे माफ कर दीजियेगा । आज से हम दोनों मिल–जुलकर रहेंगे ।'

फिर उसने उठकर आँखों में आँसू भरकर अनौखे को अपने गले से लगाकर कहा–'भाई मुझे क्षमा करो ।'

अनौखे की आँखों में पानी भर आया । दोनों भाई गले मिलकर रोने लगे ।

यह दृश्य देखकर मुखिया कहने लगा–'मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुम दोनों ने अपने आप मेल कर लिया । भाइयो ! मिल–जुलकर रहने में जो कुछ सुख है वह फूट में कहाँ है । परिवार में जब हम सुख–शान्ति से रहते हैं, एक–दूसरे का भला सोचते हैं तो स्वर्ग–सा वातावरण हो जाता है । आपसी द्वेष, ईर्ष्या और कलह से ही परिवार नरक जैसा बन जाता है ।

चोखे और अनौखे दोनों भाइयों ने प्रतिज्ञा की कि अब वे एक–दूसरे के हित में अपना हित समझेंगे । वे परिवार में सदैव स्नेह और आत्मीयता का वातावरण बनाये रखेंगे । आपसी कलह छोड़कर बच्चों को अच्छा बनाने में अपना समय लगायेंगे । दूसरों की बातों में न आकर दोनों भाई अपनी बुद्धि से काम करेंगे ।'

इसके बाद चोखे, अनौखे और चुनिया सभी खुशी–खुशी पंचायत से अपने घर लौटे । अब उनके मन में एक नया संकल्प था ।



राजकुमार की चतुराई

सम्राट सौमित्र सेन अपने रत्नजटित सिंहासन पर बैठे थे। उनका मुख दर्प और प्रसन्नता से दमक रहा था। सम्राट के चारों ओर बैठे सभी सभासद्, सभी मन्त्री मुक्त कण्ठ से कुशल नेतृत्व की प्रशंसा कर रहे थे। बात भी कुछ ऐसी ही थी। कल ही तो सौमित्र सेन ने अपने बड़े शक्तिशाली शत्रु रत्नपुर के राजा को युद्ध में ऐसा खदेड़ा था कि वह लड़ाई का मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ।

सभासद राजा की इतनी बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा कर रहे थे कि उसका घमण्ड और भी बढ़ता जा रहा था। बायीं ओर बैठा एक चारण राजा की प्रशंसा में कविता सुना रहा था-'महाराज ! आपके यश के द्वारा समस्त संसार को ही श्वेत बना दिया गया है। इससे देवताओं को बड़ी परेशानी हो रही है। क्योंकि इन्द्र अपना ऐरावत, ब्रह्मा अपना हंस, विष्णु अपना क्षीरसागर और शंकर अपना कैलाश ढूँढ़ते फिर रहे हैं......।'

चारण से इस प्रकार की स्तुति सुनकर राजा कहने लगा--'सचमुच मैं कितना महान् हूँ। कितनी शक्ति है मुझ में। रत्नपुर के राजा की सेना के कैसे दाँत खट्टे किये हैं मैंने। है कोई ऐसा जो मुझे हरा सके ?' राजा पर मदिरा के नशे के साथ-साथ प्रशंसा का नशा भी गहरा चढ़ता जा रहा था।

तभी राजा का ध्यान राजकवि चालुक्य की ओर गया। वह चुपचाप बैठे थे। राजा की प्रशस्ति में कोई भी कविता नहीं सुना रहे थे।

'राजकवि को हमारी विजय की प्रसन्नता नहीं हुई ?' वे पूछने लगे।

ऐसा कैसे हो सकता है, महाराज ! राजकवि सिर झुकाकर हाथ जोड़कर बोले।

तो फिर हमारी स्तुति में, हमारी शक्ति की प्रशंसा में कविता क्यों नहीं बना रहे ?'

क्षमा करें देव ! मैं केवल भगवान की स्तुति करता हूँ, उसी की शक्ति की प्रशंसा करता हूँ ।' उसी की शक्ति से आप विजयी हुए हैं ।' राजकवि विनम्रतापूर्वक बोला ।

यह सुनकर राजा की भ्रकुटि तन गयी । अपनी लम्बी-लम्बी मूँछों को गर्व से ऐंठकर वे क्रोध से हुँकारे-राजकवि चालुक्य ! ईश्वर कुछ नहीं है । राज्य का कर्ता-धर्ता मैं ही हूँ । तुम यहाँ ईश्वर की इच्छा से नहीं मेरी इच्छा से नियुक्त किये गये हो । मैं तुम्हें एक सप्ताह का समय देता हूँ । या तो मेरी प्रशंसा में काव्य लिखो, नहीं तो आठवें दिन तुम्हें फाँसी पर लटका दिया जायेगा ।

चालुक्य उस समय तो चुप रह गये । कुछ भी कहना राजा के गुस्से को बढ़ाना था, पर मन ही मन वह सोचने लगे कि मैं अपनी आत्मा की हत्या करके कुछ भी न लिखूँगा । मैं कवि हूँ, ब्रह्मा जैसा महान् हूँ । मेरा काम व्यर्थ की बकवास करना नहीं हैं । मनुष्यों को सन्मार्ग की प्रेरणा देना उन्हें उद्‌बोधन देना मेरा कर्तव्य है ।

राजकवि मृत्युदण्ड की प्रतीक्षा करने लगा । वह निरन्तर भगवान के चिन्तन में डूबा रहता । आत्मा-परमात्मा के विषय में मनन करता रहता ।

दैवयोग की बात ! इस घटना के चार दिन बाद ही राजमहल में हाहाकार मच गया । साँप के काटने से राजा का इकलौता पुत्र मर गया । कवि तुरन्त राज भवन दौड़ा चला गया । राजा सिर पटक-पटककर विलाप कर रहा था-'हे भगवान् ! यह तूने क्या किया ? इसके साथ-साथ तू मेरे भी प्राण ले लेता । अब मैं कैसे जीऊँगा...............।'

कवि को देखते ही राजा बिलख उठा-राजकवि ! भगवान् ने मेरी आँखें खोल दी हैं । उसी की इच्छा के अनुसार सब कुछ होता है । अब तक मैं व्यर्थ के अहम् में डूबा रहा ।

इसी का मुझे यह दण्ड मिला है ।'

'ठीक कहते हो पिताजी !' सहसा मरा हुआ पुत्र बोल पड़ा ।

सभी आश्चर्य से दंग रह गये । राजा ने कसकर पुत्र को हृदय से लगा लिया । उसका माथा चूमते हुए, भरे हुए गले से केवल इतना ही निकल पाया–'हाँ बेटा ।'

वास्तव में बात यह हुई थी कि राजकवि के मृत्यु दण्ड की बात जानकर राजकुमार को बड़ा दुःख हुआ था । वह जानता था कि कवि कभी ऐसा ग्रन्थ नहीं लिखेगा जैसा कि उसे आज्ञा मिली हैं । कवि को बचाने के लिये ही उसने यह नाटक किया था । योगाभ्यास से शरीर को बिलकुल निश्चल और निस्पन्द बना लिया था । सेवक ने योजना के अनुसार राजकुमार के मरने की खबर उड़ा दी और तब राजा ने चालुक्य से ईश्वर की प्रशस्ति में महाकाव्य लिखने का अनुरोध किया ।

धनी कौन ?

बहुत दिनों की बात है । बलख में इब्राहीम नाम का बादशाह शासन करता था । एकबार उसे धन की जरूरत हुई । प्रजा पर कर वह लगाना नहीं चाहता था, क्योंकि बादशाह जानता था कि ऐसा करने से गरीबों को परेशानी होगी ।

अतएव इब्राहीम ने अपने राज्य में एक घोषणा कराई । वह यह कि बादशाह को राज्य के विकास के लिये कुछ धन चाहिये । जो अमीर हो, अपनी इच्छा से धन देना चाहता हो, वह बादशाह के पास चला आये ।

दूसरे ही दिन नगर का सबसे धनी व्यक्ति बादशाह के पास आया । उसके हाथ में सोने की अशर्फियों से भरी थैली थी ।

'हुजूर ! मेरी यह तुच्छ सेवा स्वीकार कीजिये ।' बादशाह को झुककर नमस्कार करते हुए, उनके आगे थैली रखते हुए वह बोला ।

बादशाह उस धनी को अच्छी तरह जानता था । वह बहुत धनवान था, पर कंजूस भी था । पैसे को बड़ा संभाल कर रखता था । खर्च करना उसे बड़ा बुरा लगता था । पर धन की भूख उसे इतनी अधिक थी कि सुबह से रात तक मर–खपकर धन कमाने की ही कोशिश में लगा रहता था ।

बादशाह ने एक पल उसे देखा और बोला–'पर मैंने तो केवल धनी व्यक्तियों से ही धन की माँग की है ।'

हुजूर ! गुस्ताखी माफ करें, मैं तो आपकी दुआ से नगर का सबसे बड़ा धनी आदमी हूँ..........।' बड़ी विनम्रता से वह कहने लगा ।

'पर मेरी दृष्टि में वह व्यक्ति धनी नहीं है जो धन को जोड़–जोड़कर ही रखता जाता है । मैं तो उसी को धनी मानता हूँ जो दूसरों की सेवा में, उपकार में अपने धन को खर्च करता है । वह व्यक्ति जिसकी धन की लालसा समाप्त नहीं हुई है वह धनी कहाँ है ? वह व्यक्ति जो धन का न स्वयं प्रयोग करता है और न किसी को देता ही है, धनवान कैसे कहा जा सकता है ? उसका धन तो बस नष्ट होने के लिये ही होता है । यदि किसी गरीब को धन की भूख नहीं है, जो उसके पास है, उसी में वह संतोष पाता है, तो मैं उसे ही धनी मानता हूँ । वह यदि मुझे एक पाई भी दे तो मैं उसे ले लूँगा । क्योंकि वह मन से धनी है अतः वास्तव में धनी है ।' बादशाह कह रहा था ।

नगर सेठ का सिर लज्जा से झुक गया । अशर्फियों से भरी थैली उठाकर वह चुपचाप चलता बना ।



सौन्दर्य का रहस्य

एक प्रसिद्ध चित्रकार था । एक बार उसने सोचा कि किसी बालक का चित्र बनाना चाहिये । ऐसे बालक का जिसे देखकर ही मन में वात्सल्य, कोमलता, करुणा, और शान्ति की भावनायें उमगने लगें । पर चित्र तो तभी बन सकता था जब ऐसा ही बालक सामने होता ।

चित्रकार ऐसे बालक की तलाश में घूमता रहा । एक दिन उसकी मेहनत सफल हुई । उसे ऐसा बालक मिल गया जिसे देखते ही अशान्त मन भी शान्ति से भर उठता ।

चित्र बड़ा ही सुन्दर बना । वह इतना भव्य और आकर्षक था कि उसकी प्रतियाँ धड़ाधड़ बिकीं । चित्रकार को बड़ा धन और यश मिला ।

धीरे–धीरे वह चित्रकार मनुष्यों की विविध प्रकार की मुखाकृतियों एवं भावनाओं के चित्र बनाने के लिये बड़ा प्रसिद्ध हो गया । वृद्धावस्था में वह सोचने लगा कि मैंने मनुष्यों के सौन्दर्यपूर्ण चित्र तो अनेक बनाये हैं । अब मुझे बुरे, खूँखार डरावने व्यक्ति का भी चित्र बनाना चाहिये ।

उसने ऐसे आदमी को जगह–जगह तलाशा, जिसे देखते ही भय लगता हो, जिसके चेहरे से भी भयावहता और नृशंसता टपकती हो, पर उसे अपने प्रयास में सफलता मिलती न दीखी । निराश होकर वह अपना यह विचार ही छोड़ने लगा । तभी उसके एक मित्र ने सुझाव दिया कि उसे उन व्यक्तियों से मिलना चाहिये जिन्हें किसी अपराध में फाँसी की सजा दी जाने वाली है । सम्भव है उसे कुछ सफलता मिले ।

चित्रकार को यह विचार पसन्द आया । वह उच्चाधिकारी से अनुमति लेकर जेल गया । वहाँ उसे अपना इच्छित व्यक्ति मिल गया । वह ऐसा खूँखार लगता था कि चित्रकार को उसके पास अकेले बैठने में भी डर लगने लगा । अधिकारियों से उसे इतना पता तो लग ही गया था कि इस व्यक्ति ने अनेकों मनुष्यों की बर्बरतापूर्ण हत्या की है । इसी के कारण उसे आठ दिन बाद फाँसी लगने वाली है ।

चित्रकार ने जैसे-तैसे अपने भय पर नियन्त्रण पाया । वह उसका चित्र बनाने में तन्मय हो गया ।

कुछ देर बाद कैदी हुँकारने लगा-'क्यों बना रहे हो तुम मेरा यह चित्र ?'

'मैं इस नगर का प्रसिद्ध चित्रकार हूँ । मुझे विविध प्रकार के चित्र बनाने का बड़ा शौक है ।' चित्रकार अपने काम में डूबा हुआ कहता जा रहा था ।

'चित्र बनाकर तुम क्या करते हो ?'

'उन्हें छपवा देता हूँ । फिर लोग उन्हें खरीदते हैं ।'

यह सुनते ही कैदी की आँखों में आँसू आ गये । उसे लगा लोग हत्यारे और नृशंस व्यक्ति के रूप में उसका चित्र लगायेंगे । चित्रकार को देखते-देखते सहसा वह फूट-फूटकर रोने लगा ।

'अरे-अरे ! यह तुम क्या कर रहे हो ?' चित्रकार हड़बड़ा गया । तूलिका और कागज छोड़कर वह उठ खड़ा हुआ ।

'सुनो ! कैदी रोते-रोते कह रहा था-'तुमने बीस वर्ष पहले एक बालका का चित्र बनाया था, जो बड़ा लोकप्रिय हुआ था । अनेकों व्यक्तियों ने उसे अपने घर में टाँगा था ।'

'हाँ-हाँ बनाया था । तुमने भी अपने घर में लगाया था क्या ? चित्रकार ने पूछा ।

'मैं वही बालक हूँ । मुझे ध्यान आ रहा है–तुम्हीं मेरा चित्र बनाने आये थे । तब तुमने मुझे बहुत सारी मिठाई, फल और कपड़े भी दिये थे ।' कैदी कह रहा था ।

चित्रकार को बड़ा अचम्भा हुआ । आश्चर्य से आँखें फाड़ कर उसकी ओर एकटक देखते हुए पूछने लगा–'पर भाई ! तुम यहाँ इस स्थिति में कैसे ?'

कैदी ने अपने आँसू पोंछे और कथा सुनाने लगा । उसने बताया कि जब चित्रकार ने उसका चित्र बनाया था तब वह दस वर्ष का था । उसकी माँ उसके एक–दो वर्ष तक और जीवित रही थी । पिता तो जब वह पैदा हुआ था, तभी मर चुके थे । उसकी माँ लकड़ी काटती थी । दोनों माँ–बेटे सारे दिन मेहनत करते थे । जो रूखा–सूखा मिलता था, उसे खाकर ही रहते थे । उसकी माँ हमेशा उसे यही सीख देती रहती–'बेटा ! ईमानदारी और परिश्रम की कमाई ही ग्रहण करो । कभी बुरे विचार अपने मन में मत लाओ । कभी बुरी बात मत सोचो । जो जैसा सोचता है, वह वैसा ही बन जाता है । हमारा चेहरा शीशे की भाँति हमारे मन के विचारों की झलक दिखलाता है । तुम अच्छी बातें सोचो, मानो और करो–फिर तुम देखोगे कि तुम्हारा मुख, तुम्हारी बातें, दूसरों को कितना अधिक प्रभावित करती हैं ।'

माँ की याद करते–करते कैदी सहसा रो पड़ा । फिर सने आगे बताया कि माँ के मरने के बाद एक दिन जब वह जगल में अकेला लकड़ी काट रहा था तो डाकुओं के हाथ पड़ गया । डाकुओं ने उसे अपने गिरोह में सम्मिलित कर लिया । पहले वह निकल भागने की बात जरूर सोचता था । फिर धीरे–धीरे उसे इस काम में, दूसरों की हत्या करने में, उन्हें लूटने में मजा आने लगा । उसने अब तक पचास से अधिक हत्यायें की हैं ।

'भाई !' तुम्हें देखकर तो मैं यह अच्छी तरह समझ गया हूँ कि मन के भाव चेहरे की आकृति को कहाँ तक बदल देते हैं ।' चित्रकार बोला ।

कैदी कह रहा था–'अब तो मैं रात–दिन भगवान से बस यही प्रार्थना करता हूँ कि अगले जन्म में यदि मुझे मनुष्य बनाये तो चाहे कुछ दे या न दे, पर मेरे विचार जरूर निर्मल बनाये रखे । जिससे मैं मनुष्य जन्म को कलंकित न करूँ ।'

आज सौन्दर्य का रहस्य भी चित्रकार की समझ में आ गया था ।'

सौदागर की निडरता

बहुत समय पहले कौशल देश में एक राजा राज्य करते थे । उन्हें अच्छे–अच्छे घोड़े पालने का शौक था । परन्तु राजा को इस विषय में ज्ञान नहीं था कि कौन–सा घोड़ा बहुत अच्छा होता है । वह जो भी हृष्ट–पुष्ट घोड़ा देखता, मुँह माँगे दामों में उसे खरीद लेता ।

धीरे–धीरे राजा की इस आदत का पता न केवल कौशल के अपितु दूर–दूर के सौदागरों को लग गया । अधिकांश सौदागर यह करते कि देखने में मोटा–ताजा घोड़ा ले आते । राजा से उसकी झूंठी प्रशंसा करते, फिर मनमाने दाम लेकर खुशी–खुशी विदा होते ।

इस प्रकार राजकोष का बहुत सारा धन उन चापलूसों और झूठों की जेब में जाने लगा । यह देखकर मंत्री बड़ा दुःखी हुआ । उसने राजा से कहा भी–'महाराज ! ये सौदागर साधारण से घोड़े को बलख बुखारा और अरबी घोड़ा बताकर धन ले जाते हैं । इस प्रकार दूसरों की बात पर विश्वास करके घोड़े खरीदना उचित नहीं है ।'

पर राजा ने फिर भी अपना हठ न छोड़ा । मन्त्री था बड़ा स्वामिभक्त, वह किसी भी प्रकार से राजा को सही काम सिखाना चाहता था । राजकोष की यों बर्बादी वह सह नहीं सकता था ।

कौशल नगरी में ही अच्छे घोड़े के लक्षणों को जानने वाला एक सौदागर भी रहा करता था । तुरंग शास्त्र के अपने ज्ञान के लिये वह दूर–दूर तक प्रसिद्ध था । पर वह कभी भी कौशल के राज दरबार में नहीं जाता था । क्योंकि वह जानता था कि राजा चापलूस और खुशामद करने वालों से खुश रहता है । जबकि वह सौदागर सदैव सच्ची बात कहता था ।

मन्त्री सौदागर के पास गया और उससे बहुत देर तक बातें करने लगा । बहुत कहने–सुनने, निवेदन करने के बाद सौदागर राज सभा में जाने को तैयार हुआ ।

दूसरे दिन भी प्रतिदिन की ही भाँति घोड़ा लेकर एक व्यक्ति राज दरबार में आया । घोड़ा देखने में बड़ा सुन्दर था । दूध जैसे सफेद रंग का और लम्बा–तगड़ा था । राजा उसे देखकर प्रसन्न हुआ । वह व्यक्ति बोला–'राजन् ! यह घोड़ा अभी–अभी अरब से आया है । मैं इसे तुरन्त लेकर दौड़ा चला आया हूँ । यह आपके अस्तबल की शोभा बढ़ाये–यह मेरा सौभाग्य होगा । आप जैसा घोड़ों का पारखी आज तक न हुआ है, न होगा ।'

तभी दरबार में घोड़ा लिये हुए कोई दूसरा व्यक्ति आया । वह बोला–'महाराज ! यह शुद्ध अरबी नस्ल का घोड़ा है । सभी गुणों से युक्त है । एक बार में कम से कम तीन सौ मील तक दौड़ता है । ऐसा घोड़ा आपके अस्तबल में नहीं होगा । आपको पसन्द हो तो ले सकते हैं ।

राजा ने देखा कि दूसरे सौदागर का घोड़ा, पहले घोड़े से देखने में उतना सुन्दर भी नहीं लग रहा था और दुबला भी था ।

राजा ने पहले घोड़े की ओर इशारा किया और कहा—'देखो ! तुम्हारे घोड़े से तो यही अच्छा है ।'

पहले घोड़े के मालिक ने भी कहा—'हाँ—हाँ महाराज ! मेरे घोड़े से तो इसके घोड़े की कोई तुलना नहीं हो सकती ।'

अब उन दोनों व्यापारियों में विवाद छिड़ गया । दोनों ही अपने—अपने घोड़ों को अच्छा बताने के लिये अनेक तर्क देने लगे ।

राजा ने उनकी लड़ाई शांत करने के लिये दरबारियों से निर्णय जानना चाहा ।

अनेक दरबारी ऐसे थे जो राजा की चापलूसी करते थे और अपना लाभ करते थे । वे सभी कहने लगे—'महाराज ! आप तो घोड़ों के बहुत बड़े ज्ञाता हैं । आपकी बात भला झूँठ कैसे हो सकती है ?'

अब तो राजा को भी गुस्सा आ गया । वह बोला—'झूठ बोलने के अपराध में इस दूसरे सौदागर को ५०० कोड़े लगाये जायें ।

सभी सोच रहे थे कि सौदागर गिड़गिड़ायेगा, राजा से माफी माँगेगा । परन्तु ऐसा कुछ भी न हुआ । उसने सोचा जब में झूँठ नहीं बोल रहा तो डरूँ क्यों ? वह गर्व से सीना तानकर कहने लगा—'आप सब जिस घोड़े को अच्छा बता रहे हैं, जब वह दो महीने का था तब गिर पड़ा था । इसका असर इसकी टाँग पर अभी भी है । यह न तो तेज दौड़ सकता है, न ही अधिक दूर तक दौड़ सकता है ।'

इतनी देर से चुपचाप बैठा मन्त्री अब कड़ककर बोला—'सच—सच बताओ, नहीं तो तुम्हें इससे दुगने कोड़े लगाये जायेंगे ।'

अब तो पहला सौदागर डर के मारे पीला पड़ गया ।

हाथ जोड़कर बोला–'जी महाराज !'

राजा को यह सुनकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि दूसरे सौदागर ने यह कैसे जाना । पूछने पर पता लगा कि घोड़े की पीछे वाली टाँग पर एक निशान है । उसी के आधार पर सौदागर ने यह कहा है ।

दूसरा सौदागर यह कह रहा था–'महाराज ! दोनों घोड़ों को साथ–साथ दौड़ाकर देख लीजिये । सच क्या है ? सभी को पता लग जायेगा ।'

राजा ने गुस्से में भरकर कहा–'इसका घोड़ा रख लो और भगा दो इसे यहाँ से ।' राजा के अंग रक्षकों ने उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया ।

'आप तो घोड़ों के बहुत बड़े पारखी लगते हैं । कहाँ से पधारे हैं आप ?' राजा ने अब दूसरे सौदागर से पूछा ।

उसने तुरन्त अपनी नकली दाड़ी उतार डाली । राजा ने देखा कि वह तो उसी के राज्य का प्रसिद्ध सौदागर है । दूसरों की बातों में आकर राजा ने उसका तिरस्कार किया था । इसीलिये कभी वह दरबार में नहीं आता था ।

अब राजा की आँखें खुल गयी थीं । उसकी समझ में आ गया था कि दूसरे किस प्रकार उसे ठगते हैं । राजा ने उस सौदागर की 'तुरंग पारखी' के पद पर नियुक्ति कर दी । ढेर सारा धन देकर राजा ने उसे विदा किया ।

उसके साथ–साथ कौशल नगरी में राजा की ओर से यह घोषणा कर दी गयी कि जो कोई दोष युक्त और साधारण घोड़ा दरबार में ले जायेगा या अपने घोड़े की बढ़ा–चढ़ाकर तारीफ करेगा, उसे ५०० कोड़े मारे जायेंगे । साथ ही उसका घोड़ा भी छीन लिया जायेगा ।

इसके बाद राजा से झूठ बोलकर धन ऐंठने का किसी को भी साहस न हुआ ।

हाथी की सूझबूझ

सोनू सिंह जब बुड्ढा हुआ तो सोचने लगा कि अब मुझे सांसारिक लोभ--मोह से मन हटाना चाहिये । जीवन भर मैंने अच्छे–बुरे कार्य किये हैं । अब मन लगाकर भगवान का भजन करना चाहिये ।

बस फिर क्या था । सोनू ने तुरन्त अपने बेटे को राजगद्दी पर बैठाया । स्वयं माला लेकर भगवान् का भजन करने लगा ।

पूजा करते–करते सिंह का मन भगवान् के चरणों से भटकने लगता था । एक दिन बगुला भगत ने सुझाव दिया कि वह भगवान् का चित्र अपनी गुफा में लगा ले । अपने मन को उसमें लगाने का प्रयास करे ।

सिंह ने यही तय किया । उसने अपने राज्य के कुशल चित्रकार विशाल नाम के हाथी को बुलाया । विशाल ने सिंह की बात सुनी । फिर उसने अपनी सूँड़ से ब्रुश दबाया, उस पर रंग लगाया और भगवान् का सुन्दर चित्र कुछ ही देर में गुफा की दीवार पर बना दिया ।

चित्र बड़ा ही सुन्दर बना था । सिंह अपने मन को उसमें स्थिर करने का प्रयास करने लगा । कुछ दिन तक तो उसका मन उसमें लगा, फिर उससे अरुचि होने लगी ।

अब सिंह ने विशाल को फिर बुलवाया और दूसरे देवता का चित्र बनवाया । एक–दो दिन उसकी पूजा की । अधिक समय तक उसमें मन नहीं लगने पाया ।

कुछ दिनों बाद विशाल को बुलाकर फिर तीसरा चित्र बनवाया गया । अब सिंह यह भी सोचने लगा कि दीवारों पर अनेक सारे चित्र सजाना, बस यही भगवान की भक्ति है । वह उन चित्रों की आरती कर देता, अगरबत्ती जला देता–सोचता

कि मैंने बड़ी पूजा की है । फिर वह सारे दिन मस्त पड़ा खाता रहता, जिस–तिस की बुराई करता रहता ।

धीरे–धीरे सारे जान्वरों में यह बात फैल गयी कि सोनू सिंह बहुत बड़ा भक्त हो गया है । अपनी तारीफ सुनना भला किसे बुरा लगता है ? सोनू भी जब अपनी प्रशंसा सुनता तो उसके गाल फूलकर कुप्पा हो जाते, उसका शरीर रोमांचित होने लगता ।

सोनू ने सोचा कि मैं यदि अपनी पूरी गुफा में भगवान् के चित्र बनवा लूँ तो फिर मेरी और अधिक प्रशंसा होगी । बहुत बड़े भक्त के रूप में मेरी ख्याति दूर–दूर तक फैल जायेगी ।

सोनू ने यही किया । विशाल को बुलावाया और पूरी की पूरी दीवार पर चित्र बनाने को कहा । विशाल मन ही मन में बड़ा कुढ़ा, पर वह तो उसके राज्य में रहने वाला चित्रकार था । साफ–साफ आखिर मना भी कैसे करता ? विशाल कई दिनों तक चित्र बनाता रहा और सोचता रहा कि कैसे मैं इस सिंह को सन्मार्ग पर लाऊँ । भगवान् की आड़ लेकर, भजन के नाम पर यह तो और भी अहंकार के गड्ढे में गिरता चला जा रहा है ।

अन्त में विशाल हाथी को एक उपाय सूझ ही गया । उसने सारी दीवार पर तो चित्र बना दिये । बस एक चित्र की जगह जब रह गयी तो उसे काले रंग से पोत दिया । सिंह से कह दिया कि जब वह काला रंग सूख जायेगा तब चित्र बनेगा ।

विशाल रोज आता और काला रंग उसी जगह फिराकर चला जाता । एक महीने तक यही क्रम चलता रहा । एक दिन सोनूसिंह को बड़ा गुस्सा आया । वह सीधा विशाल के सामने जाकर खड़ा हो गया । कहने लगा–'चित्रकार महोदय ! यह किस लोक के देवता का भव्य चित्र बन रहा है ? कब तक यह बनकर पूरा होगा ?'

'महाराज ! गुस्ताखी माफ करें । छोटे मुँह बड़ी बात है, पर कहे बिना मैं न रह पाऊँगा ।' विशाल बोला ।

'हाँ-हाँ, कहो-कहो....।' शेर ने कहा ।

'आप इतने सारे यह चित्र आखिर क्यों बनवा रहे हैं ?' विशाल पूछने लगा ।

सिंह बोला-'इन चित्रों से मेरा मन पवित्र बनेगा, भगवान् के चरणों में लगेगा ।'

विशाल ने गम्भीर होते हुए कहा-'महाराज ! अपराध क्षमा कीजियेगा । चित्र लगाने से मन कभी निर्मल नहीं बनता । मन की गति बड़ी ही चंचल है । यह पवित्र बनता है अच्छे विचारों से, उच्च चिन्तन से । जब तक लोभ, मोह और अहंकार की स्याही से मन काला बना हुआ है तब तक उस पर भगवान का चित्र नहीं बन सकता । इन सबको हटाकर, सच्चे मन से भगवान् का सुमिरन करने वाले को उनकी प्राप्ति अवश्य होती है ।'

'अच्छा तो तुम उस जगह काली स्याही रोज-रोज पोतकर क्या मुझे यही सिखाया करते हो ?' सिंह सोचते हुए पूछने लगा ।

विशाल कहता भी क्या चुपचाप खड़ा रहा ।

'आज से तुम मेरे गुरु हुए । तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं ।' कहते हुए सिंह ने विशाल के चरण छू लिये ।

इसके बाद से सिंह ने चित्रों का मोह छोड़ दिया । वह सब जगह भगवान् की झलक देखता हुआ शांत मन से पूजा करने लगा ।

शक्ति की सार्थकता

एक बार हिरण्यक चूहा अपनी पत्नी और बच्चों सहित बिल में बैठा था । सभी बता रहे थे कि आज किस-किस ने क्या किया ? किस प्रकार से दिन का सदुपयोग किया ? दूसरों की क्या सेवा सहायता की ? तभी एकाएक जोर का भूकम्प आया । हिरण्यक सभी के साथ बिल से बाहर निकल

आया । दो सेकिण्ड बाद ही भूकम्प समाप्त हो गया, पर इसके साथ-साथ हिरण्यक का बिल भी तहस-नहस हो गया ।

हिरण्यक बड़ा दुःखी हुआ । तभी जोर-जोर से तूफान आने लगा । अब वह सोचने लगा कि परिवार के प्राणों की रक्षा के लिये किस स्थान पर जाऊँ । तभी उसे अपनी सहेली श्वेता नाम की भेड़ की याद आयी । अपने झुण्ड की नेता वह श्वेता यहाँ से चार फर्लांग की दूरी पर एक बाड़े में रहा करती थी ।

तूफान से जैसे-तैसे बचता-बचाता, पेड़ों के नीचे चलता हुआ हिरण्यक श्वेता के बाड़े तक पहुँचा । तेजी से चलने के कारण वह और उसकी पत्नी दोनों ही हाँफ रहे थे । उनके दिल तेजी से धक-धक कर रहे थे । वे पूरी तरह से भीग गये थे और उनके रोंगटे खड़े हो गये थे । बच्चों को तो दोनों अपनी-अपनी पीठ पर चढ़ाकर लाये थे । बच्चे भी ठण्ड से बुरी तरह काँप रहे थे ।

हिरण्यक ने जोर से दरवाजा खटखटाया ।

'कौन है ?' अन्दर से आवाज आयी । 'मैं तुम्हारा मित्र हिरण्यक' चूहा बोला । श्वेता अपने मित्र की आवाज पहचान गयी थी । उसने तुरन्त द्वार खोलने का आदेश दिया ।

ठिठुरता-सिकुड़ता चूहा अन्दर घुसा । सर्दी के कारण सभी के सभी बुरी तरह काँप रहे थे । श्वेता ने उन्हें तुरन्त सामने पड़े ऊन के ढेर में घुसा दिया । उन्हें गर्म चाय पिला दी । तब कहीं जाकर सर्दी दूर हुई । काँपना बन्द हुआ ।

दो-तीन दिन तक श्वेता ने अपने मित्र को कहीं जाने नहीं दिया । उसे अपना मेहमान बनाकर रखा । उसकी खूब खातिर की । हिरण्यक ने सोचा कि पड़े-पड़े इतने दिन ऐसे ही बीत गये । अब तो चल कर नया बिल बनाना ही चाहिये । मित्र पर अधिक बोझ डालना उचित नहीं । मित्र हो या फिर सम्बन्धी, दो-चार दिन से अधिक उनके यहाँ रहने पर सम्मान घटता ही है ।

श्वेता ने बड़ी मुश्किल से हिरण्यक को जाने की अनुमति दी । अपनी सहेली से खूब सारे उपहार लेकर, रास्ते के लिये भोजन लेकर फिर जल्दी आने का वायदा करके हिरण्यक अपने परिवार के साथ निकल पड़ा ।

कुछ दूर चलने के बाद चूहे के बच्चे थक गये । अतएव चूहा सबको लेकर बरगद के एक वृक्ष के नीचे जाने लगा । उसने सोचा कि थोड़ी देर विश्राम करेंगे, भोजन करेंगे फिर आगे की यात्रा पर निकल पड़ेंगे । हिरण्यक का छोटा बेटा सबसे आगे उछलता-कूदता चल रहा था । उसने अपनी मौज में ध्यान नहीं दिया और पेड़ के नीचे सोये पड़े जंगली सूअर से जा टकराया । सूअर की आँख खुल गयीं । वह अपनी लाल-लाल आँखों को खोलकर, थूँथनी को ऊपर चढ़ाकर घुर्राया । गुस्से में भरकर उसने बच्चे को पकड़ने के लिये अपना हाथ बढ़ाया और उसे कुचल कर अधमरा कर दिया ।

'इसे छोड़ दो, इसे छोड़ दो दादा ! चूहे की पत्नी चिल्लाती हुई बोली ।

'यह नादान बच्चा अनजाने में आपसे जा टकराया है । इसका अपराध क्षमा करें ।' हिरण्यक अपने दोनों हाथों को जोड़कर, सिर को उसके पैरों पर झुकाते हुए बोला ।

'ये लो, बड़े आये बातें बनाने वाले । आज तो मैं इसे मारकर ही छोड़ूँगा ।' सूअर गुस्से में भरकर बोला ।

हिरण्यक बार-बार सिर झुकाकर बच्चे को छोड़ने की विनती करने लगा । जब सूअर ने एक न सुनी तो चूहा बोला-'दादा ! शक्ति वही सार्थक है जिससे हम दूसरों का भला कर पायें । वही शक्तिशाली धन्य है, जो दूसरों की सहायता करता है, उन्हें ऊँचा उठाता है । उस शक्ति से क्या लाभ जो निर्बलों को सताती हो ।'

अब तो सूअर और भी भड़क उठा । हाथों को नचाते हुए बोला--'भागो यहाँ से, नहीं तो तुम्हारे पूरे परिवार को नष्ट कर दूँगा ।'

तभी चूहे के बच्चे को अवसर मिला और वह सूअर की पकड़ से भाग छूटा, हिरण्यक की पत्नी ने तुरन्त उसे मुँह में दबाया और वहाँ से भागी। हिरण्यक और दूसरा बच्चा भी तुरन्त वहाँ से भाग आये। पच्चीस–तीस कदम चलने के बाद ही हिरयण्क की पत्नी को पेड़ के तने में बड़ा–सा खोखला भाग दीखा। वह दौड़कर उसमें घुस गयी। हिरण्यक भी उसमें ही आ गया। वह सभी इतने भयभीत हो गये थे कि दस–पन्द्रह मिनट तक बैठे काँपते रहे। अन्त में हिरण्यक ने सभी को धैर्य बँधाया और सूअर के चंगुल से बचकर निकल आने के लिये भगवान् को धन्यवाद दिया। मन ही मन वह कहने लगा–'हे भगवान् ! तू ऐसी शक्ति किसी को न दे जो दूसरों को सताये।'

फिर सभी ने मिलकर खाना खाया और वहीं पड़कर सो रहे शाम को सोते–सोते अचानक हिरयण्क की आँख खुल गयी। किसी का करुण चीत्कार उसे सुनाई पड़ रहा था। वह बाहर निकल कर आया। कुछ दूर चलने के बाद उसने देखा कि वही सुबह वाला सूअर पेड़ से बँधा पड़ा है। वही रो रहा है और अपनी सहायता के लिये पुकार रहा है।

हिरण्यक पेड़ के पास पहुँचा और बोला–'तुम्हारा यह हाल कैसे दादा ?'

'अरे शिकारियों ने बाँध डाला है, मुझे बचाओ।' दर्द से कराहते हुए सूअर के मुँह से निकला।

हिरण्यक चाहता तो मुँह फिराकर चला जाता, क्योंकि यह वही सूअर था, जिसने सुबह उसे बड़ा तंग किया था, पर वह इतने संकीर्ण मन वाला नहीं था। वह सोचने लगा कि विपत्ति में पड़ा हुआ चाहे कोई प्राणी हो, शत्रु हो या मित्र हो, उसकी रक्षा करना हमारा धर्म है। यह शरीर दूसरों की सेवा में और सहायता में जितना अधिक काम आ पाये–इस में ही इसकी सार्थकता है।

तुरन्त हिरण्यक दौड़ा–दौड़ा वृक्ष के निकट पहुँचा। अपनी

पत्नी और बच्चों को तुरन्त बुलाकर लाया । सभी ने मिलकर सूअर के बन्धन काटे । बन्धन से मुक्त होते ही वह कृतज्ञता से भर उठा । उसकी आँखों में आँसू भर आये । वह सोचने लगा कि देखो इस चूहे ने मेरे अपकार को भी भुलाकर मेरी प्राण-रक्षा की है-यह कितना महान् है ।

सूअर ने आगे बढ़कर हिरण्यक के थपथपाया और बोला-'भाई ! शक्ति के घमण्ड में मैं उन्मत्त था । मुझे आज यह सबक अच्छी तरह मिल गया है कि न कोई छोटा है और न कोई बड़ा । समय पड़ने पर सभी एक-दूसरे के काम आते हैं । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से किसी को भी नहीं सताऊँगा ।

अब वह सूअर किसी को भी तंग नहीं करता । अधिक से अधिक दूसरों की सहायता करता है । अब सभी उसे बहुत चाहते हैं ।

साधु का सुझाव

काँची नगरी में एक मूर्तिकार रहता था । दूर-दूर तक उसकी ख्याति फैली हुई थी । वह इतनी सुन्दर मूर्ति बनाता था कि देखने वाले को ऐसा लगता था मानो कोई व्यक्ति ही साक्षात् सामने खड़ा हो ।

दूर-दूर से अनेक धनी व्यक्ति, अनेक राजा उस मूर्तिकार को बुलाते, पर यह विडम्बना ही थी कि उसके अपने देश का राजा उसकी कला का आदर नहीं करता था । यही नहीं वह उस पर कभी कोई तो कभी कोई आरोप लगाकर उसे दण्ड देता था ।

मूर्तिकार इस बात से दुःखी रहा करता था । उसने राजा को प्रसन्न करने के बहुतेरे उपाय किये । राजा को अनेक

सुन्दर मूर्तियाँ बनाकर दीं, पर सब व्यर्थ । राजा उसके प्रति पहले की भाँति ही बना रहा ।

एक बार कोई साधु मूर्तिकार के यहाँ अतिथि बने । उन्होंने देखा कि वह हर समय दुःखी और उदास रहता है । साधु ने इसका कारण पूछा । मूर्तिकार ने राजा के नाराज रहने की सारी कथा साधु को सुनाई ।

साधु कहने लगा--'जरूर तुम पीठ पीछे राजा की बुराई करते होगे । दूसरे व्यक्ति उन बातों को बढ़ा-चढ़ाकर राजा को बताते होगे ।'

'नहीं स्वामी जी ! मैं तो किसी से भी राजा की बुराई नहीं करता ।' मूर्तिकार बोला ।

साधु कुछ देर तक सोचता रहा, फिर बोला-'तो तुम्हारे मन में राजा के प्रति बुरे विचार उठते होगे । तुम उनका बुरा सोचते होगे ।'

'नही ऐसा भी नहीं है ।' मूर्तिकार बोला ।

'तुम राजा के विषय में आखिर कुछ तो सोचते होगे ?' साधु पूछ रहा था ।'

'महाराज ! मैं राजा को प्यार ही करता हूँ ।' फिर वह एक बड़ी-सी आलमारी खोलता हुआ बोला-'देखिये ! सबसे बढ़िया वाला संगमरमर लाकर मैंने यहाँ इकट्ठा किया है । मैं चाहता हूँ कि राजा के मरने पर एक भव्य मूर्ति बनाऊँ ।'

असल में काँची नगरी की यह प्रथा थी कि जीवित राजाओं की मूर्तियाँ नहीं बनायी जाती थीं । मृतक राजाओं की ही मूर्तियाँ बनती थीं तथा उन्हें राजभवन में बने एक मन्दिर में सजाया जाता था ।

मूर्तिकार की बात सुनते ही साधु सिर हिलाते हुए बोला-'वत्स ! अब मेरी समझ में सारी बात आ गयी है । देखो ! हमारी भावनाओं में, विचारशक्ति में बहुत प्रभाव होता है । दूसरे के प्रति जो बुरे विचार हमारे मन में आते हैं, वे उस व्यक्ति पर भी प्रभाव डालते हैं । तब यह न सोचो कि जब

राजा मरेगा तब उसकी मूर्ति बनाऊँगा । इस संगमरमर से तुम राजा के पिता की सजीव प्रतिमा बनाओ ।

मूर्तिकार उसी दिन से भूतपूर्व राजा की प्रतिमा बनाने में जुट गया । छह महीने के कठोर परिश्रम के बाद बड़ी ही आकर्षक मूर्ति बनकर तैयार हुई । राजा को जब यह प्रतिमा भेंट की गयी तो वह कुछ पल बिना पलक झपकाये उसे देखता ही रहा । उसे लगा कि मानों उसके पिता साक्षात् रूप से उसके आगे खड़े हुए हैं ।

राजा ने मूर्तिकार को अनेक बहुमूल्य पुरस्कार दिये । उसे राज्य के प्रमुख मूर्तिकार के पद पर नियुक्त किया । राजा ने पिता की पुरानी मूर्ति को हटवाकर राजभवन के मन्दिर में वह नई मूर्ति स्थापित कराई

इसके बाद फिर कभी राजा मूर्तिकार पर क्रोधित नहीं हुआ ।



मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा